Date :

Chapter-2

==

: द्वितीय अध्याय :

: शैलेश मटियानीजी के उपन्यासों की कथावस्तु : भाषिक-संरचना के विशेष संदर्भ में :

==

: द्वितीय अध्याय :

:: शैलेश मटियानीजी के उपन्यासों की कथावस्तु : भाषिक-संरचना के विशेष संदर्भ में ::

प्रास्ताविक :

प्रस्तुत अध्याय में हम शैलेश मटियानीजी के उपन्यासों की कथावस्तु या कथानक पर विचार करेंगे, परन्तु यहां भी हमारा ध्यान उन-उन उपन्यासों की भाषा पर विशेष रूप से रहेगा। अध्याय के प्रारंभ में बहुत संक्षेप में मटियानीजी के जीवन पर भी प्रकाश डाला जाएगा क्योंकि किसी भी साहित्य के रचनाकार के जीवन का असर किसी-न-किसी रूप में उनके साहित्य में और साहित्य जिस भाषा में लिखा गया है उस भाषा पर देखा जा सकता है। हमारी पसंद-नापसंद, हमारा शब्द-चयन, हमारे प्रतीक, हमारे उपमान इन सब पर

हमारे जीवन और व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है । इस संदर्भ में राल्फ फाक्स ने विख्यात फ्रांसीसी उपन्यासकार फ्लाबेयर ﴾ फ्लाबर्ट ﴿ के मत को उद्धृत किया है — " द आथर इन हिज वर्क मस्ट बी लाइक गोड इन द युनिवर्स , प्रेजेण्ट एवरीव्हेर एण्ड विसिबल नो व्हेर ; आर्ट बीइंग ए सैकण्ड नेचर , द क्रिएटर आफ थीस नेचर मस्ट एक्ट बाय सिमिलर मैथोड्ज ; इन इच एटम , इन एवरी आस्पेक्ट्स , थेर मस्ट बी फेल्ट ए हिडन एण्ड इनफिनिट इमपैसेबिलिटी ". [1] अभिप्राय यह कि किसी भी रचना में उसके कर्ता का व्यक्तित्व छिपा हुआ रहता है , जैसे इस सृष्टि का रचयिता सर्वत्र विद्यमान होता है । भले वह दिखता न हो परन्तु उसकी उपस्थिति तो कण-कण और मन-मन में है । हमारे यहां भी रचनाकार को प्रजापति या ब्रह्मा कहा गया है — " अपारे काव्य-संसारे कविरेव प्रजापतिः । " [2] अतः रचनाकार की भाषा का अध्ययन करने से पूर्व उसके जीवन-कवन को भी देख जाना सर्वथा उचित ही कहा जाएगा ।

शैलेश मटियानी :

शैलेश मटियानीजी का जीवन अर्थात् संघर्ष की एक अनवरत यात्रा । उनका जन्म सन् 1931 में हुआ और निधन सन् 200 में । इस दौरान वे सतत समाज से , व्यवस्था से , अपनी आर्थिक-पारिवारिक-सामाजिक स्थितियों से निरंतर जूझते रहे हैं । कथाकार होने के लिए भी उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा है । संघर्ष की इस तपिश के कारण ही उनका साहित्यकार कुंदन की तरह चमकता हुआ नजर आता है । डा. पारूकान्त देसाई की एक गज़ल का शेर यहां स्मृति में कौंध रहा है —

" मिले थे गम कई तो फिर यारो हम संभल बैठे
मिली होतीं अगर खुशियां कितने बेज़ुबां होते । "

मटियानीजी को भी जो यह "ज़ुबां" , यह भाषा , मिली है उसके पीछे उनकी गमजदा जिन्दगी भी कारणभूत है । उसके कारण ही वे यह शब्दों की खेती कर सके हैं । मटियानीजी उन चन्द सारस्वतों में है जो मानते हैं कि" साहित्यकार को सिर्फ कृतित्व के ही नहीं प्रत्युत व्यक्तित्व के निकष पर भी आंकना चाहिए । " 3

मटियानीजी का जन्म अल्मोड़ा जिले के बाड़ेछिना गांव में हुआ था । उनका मूल नाम तो रमेशचन्द्र मटियानी था , पर वे पहाड़ों के लेखक हैं , पहाड़ों के प्रति उनको विशेष लगाव है , अतः पहाड़ अर्थात् शैल के "इश" अर्थात् हिमालय से , इन्होंने अपने नाम का चयन किया और अब उस "रमेश" को कोई नहीं जानता , सब शैलेश मटियानी को ही जानते हैं । उनके पिता का निधन बचपन में ही हो गया था और उसी वर्ष मां का भी निधन हो गया । उनकी आत्मकथात्मक भूमिका उनके प्रथम कहानी-संग्रह " मेरी तैंतीस कहानियां " में प्राप्त होती हैं । उसमें वे लिखते हैं —

" वय का बारहवां वर्ष कुछ ऐसा बांया सिद्ध हुआ था मेरे लिए , कि उसी एक साल में माता-पिता दोनों के स्नेहाश्रय की शीतल छांव मेरे तिरछी टोपरि पहने वाले तकदीर के टेढ़े सिर पर से उठ गई । ... और मेरे छोरमुल्या [अनाथ] जीवन की तपन भरी अनिश्चित भविष्य-यात्रा आरंभ हो गई थी । तब तक मैंने सिर्फ चौथी तक शिक्षा प्राप्त की थी । पांचवीं में प्रवेश पाकर लौट आना पड़ा था और एक बंधी-बंधाई-सी दिनचर्या आरंभ हो गई थी । सुबह उठकर नौले पर पानी भरने जाना । लौट कर गाय-भैंसें दुहना । गोठों का पर्स निकालना । कलेवा करके गाय-बकरियों को लेकर , सेलना , धनसार या सौंलखेत के बनों की ओर निकल जाना । " 4

जब तक मां-बाप का साया रहा लेखक का जीवन फिर भी सुखमय रहा । किन्तु उसके बाद उनके दुःखभरे जीवन की शुरूआत हुई । लेखक एक स्थान पर लिखते हैं — " उम्र के बारहवें-तेरहवें वर्ष में मां की अर्थी के आगे-आगे का चलना और सत्त बोलो गत्त है , सत्त बोलो

मुक्ति है ।" का सुनना -- इस स्मृति में से उतरता नहीं है ।"[5] मटियानीजी की अनेक कहानियों में× तथा उपन्यासों में हमें जो "छोरमुल्या" बच्चों की कथा मिलती है, उसके पीछे यही वेदना है । "अनाथ" के लिए "छोरमुल्या" शब्द कुमाऊं बोली का ही है । उनकी "चील" कहानी में कथा-नायक बच्चे की मां छोटी उम्र में ही मर गई थी । अपनी उन दिनों की यातना के संदर्भ में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है --

"नौ साल तक बादशाही जीवन । दसवें साल में पिता का ईसाई होकर एक अन्य स्त्री के साथ रहने के लिए चले जाना, तबसे मृत्युपर्यन्त उनका तड़पते रहना, अन्त समय में बेटे से मिलने के लिए मिन्नत-समाजत करना, रमेश के पहुंचने पर प्राण त्यागना, अग्नि-संस्कार की इच्छा प्रकट करना, नयी मां के भाई तथा समाज के विरोध के बावजूद उनकी इस इच्छा की पूर्ति होना, मां को भयंकर छूत की बीमारी का होना, छाती-सिर और हाथ-पांव से पीब और मवाद तथा गन्दे खून का टपकते रहना, उसके गन्दे चिथड़ों का नन्हे रमेश द्वारा धोया जाना और अन्त में तेरहवें वर्ष में मां का भी निधन और फिर वहां से शुरू होती है छोरमुल्ये (अनाथ) बच्चे की यातना-यात्रा ।"[6]

माता-पिता के काल-कवलित हो जाने पर तीनों बच्चे -- रमेश, उसका छोटा भाई और छोटी बहन -- चाचा-ताऊ के संरक्षण में पलते हैं । उसके बाद की लेखक की दिनचर्या का जिक्र ऊपर किया जा चुका है । सन् 1943 में माता-पिता की मृत्यु के उपरांत पढ़ाई का सिलसिला टूट गया जो पांच साल बाद पुनः शुरू हुआ बाड़ेछिना के अपर-प्रायमरी के प्रधान अध्यापक लक्ष्मणसिंह गैलकोटी के कारण । बकरियां चराते हुए रमेश स्कूल जाते बच्चों के बस्तों को ललक भरी निगाहों से देखता था । एक दिन लक्ष्मणसिंह उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछते हैं -- "क्यों तुम्हारी भी पढ़ने की इच्छा होती है ?" जवाब में रमेश फूट-फूट कर रोते हुए भाग गया था ।[7]

PlTh
11417

लक्ष्मणसिंह के समझाने पर रमेश के चाचाओं ने उसे स्कूल तो भेजा पर साथ में यह शर्त भी रखी कि उसे सारे काम करके जाना होगा । " मेरे सामने चाचाजी ने शर्त रखी थी कि यदि मैं सुबह-शाम "शिकार" की दुकान पर काम करूं, तो मेरा वहां रहना संभव हो सकता है । ... बहन को बेरहमी से मार पड़ती थी और छोटे भाई को रामजे हाईस्कूल के सामने फुटपाथ पर मूंगफलियां बेचनी पड़ती थी ।" [8] स्वयं लेखक (अर्थात् शैलेश -रमेश) को रोज तड़के उठकर दो-तीन बकरियों की खाल निकालकर, उनकी आँतें साफ करनी पड़ती थी । तब कहीं उसे स्कूल जाना नसीब होता था । [9]

लोगों के ताने-तिसने, व्यंग्य-बाण, चाचा-ताऊओं की मार, डांट-फटकार, उलाहने, छोटे भाई और बहन की अत्यंत दयनीय कारुणिक स्थिति सहते-बरदाश्ते हुए लेखक किसी तरह हाई-स्कूल तक कि शिक्षा तो समाप्त कर लेता है । लेखक जब रामजे हाईस्कूल में पढ़ रहा था, उन्हीं दिनों में उनमें प्रतिभा के बीज अंकुराने लगे थे और कुछ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताएं और कहानियां प्रकाशित होने लगी थीं । यह समय सन् 1950 के आसपास का है । तब लेखक की उम्र अठारह-उन्नीस साल की रही होगी । यह कितने आश्चर्य की बात है कि प्रेमचन्द ने भी नवाबराय नाम से लगभग इसी उम्र से लिखने की शुरूआत की थी । उन दिनों अल्मोड़ा के एक सज्जन कुंवरसिंह तिलोरा के सम्पर्क के कारण लेखक की आंखों में लेखक-कवि होने के सपने तैरने लगे थे । उन दिनों कुछ "परोत्कर्ष-दाह" से पीड़ित लोग जो लेखक की कुल-परंपरा से भी वाकिफ थे बिच्छू की तरह डंक मारते थे —" अरे, बिशनवा जुआरी का बेटा और शेरसिंह बूचड़ का भतीजा लेखक बन रहा है । बापदादा उसके जुआ खेलते - खेलते ही खतम हो गए, चाचा भी सभी बूचड़ और जुआरी ही हैं और यह लौंडा कविता-कहानियां लिख रहा है । घोर कलियुग किसे कहते है ? जुआरी का बेटा, बूचड़ का भतीजा पंत-इलाचन्द्र बनने का सपना देख रहा है ।" [10] पन्त और इलाचन्द्र ये दोनों कुमाऊं प्रदेश के लेखक-कवि हैं और उच्चवर्णीय हैं और आम लोगों की यह धारणा हुआ करती थी कि कवि-लेखक तो बामन-ठाकुर

ही हो सकते हैं और यह जाहिर-सी बात थी कि वे ही लोग उन दिनों पढ़ते-लिखते थे, अतः लेखक-कवि भी वे ही लोग बन सकते थे। परन्तु यहां विचित्र-सी बात तो यह है कि ऐसी टीका-टिप्पणी करने वाले लोगों में उच्च-वर्ण के लोग कम और निम्नवर्ण के लोग ही ज्यादा थे। बाद में जब मटियानीजी एक सिद्ध-हस्त लेखक बनकर सामने आते हैं, तब उनका जवाब देते हुए-से वे लिखते हैं — " यह कलयुग का एक बहुत बड़ा गुण है कि उसमें श्रेष्ठ कर्मों का प्रतिपादन उच्चवर्ग के लोगों की बपौती नहीं रह जाती, बल्कि यदि साधना हो, संकल्प हो और प्रतिभा हो, तो जुआरी का बेटा और कसाई का भतीजा भी साहित्यकार बन सकता है।" ।। यहां मेरे मार्गदर्शक प्रोफेसर डा. पारूकान्त द्वारा कक्षा में कही हुई बात का स्मरण हो आता है। उनका भी लगभग यही मानना था कि पोंगा-पंडितों द्वारा अति-निंदित यह कलियुग सचमुच में दलि-पीड़ित-निम्नवर्ग-महिलावर्ग के लिए किसी स्वर्णयुग से कम नहीं है।

हाईस्कूल तक की शिक्षा जो लेखक पा सके उसमें उसके मंझले चाचा, दादी का लाड़-प्यार, स्व. गुरुजी लक्ष्मणसिंह की प्रेरणा, हाईस्कूल के गुरु नारायणदत्त जोशी, धर्मानंदजी आदि का योगदान है। किन्तु तभी दादी का देहावसान हो जाता है और स्नेह का वह एकमात्र तंतु भी टूट जाता है, तब लेखक अपने निस्सहाय छोटे भाई और बहन को उनके भाग्य के हवाले कर अल्मोड़ा को अलविदा करते हुए, छोटे चाचा के यहां से ही चुराये हुए उन्नीस रूपये कुछ आने लेकर रानीखेत, हलद्वानी होते हुए दिल्ली पहुंचते हैं और यहां से शुरू होती है एक दूसरे प्रकार की संघर्ष यात्रा — रोटी, कपड़ा और छत की संघर्ष-यात्रा।

दिल्ली पहुंचकर लेखक "अमर कहानी" के संपादक भाईश्री ओमप्रकाशजी से मुलाकात करते हैं। उनके प्रयत्नों से लेखक को चालीस रूपये महीने की नौकरी "अग्रवाल एण्ड कंपनी" में मिलती है, लेकिन

अपने सपनीले बावरेपन और लेखक-कवि बनने के "आब्सेसन " के कारण दो-चार दिन में ही "दो राहा" नामक एक उपन्यास को घसीटकर और उसे पन्द्रह रूपये में बेचकर इलाहाबाद पहुंचते हैं, क्योंकि उन दिनों इलाहाबाद सर्फ हिन्दी साहित्य का केन्द्र था । वहां "माया" के कार्यालय में नयी कविता के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर शमशेर बहादुरसिंह से मुलाकात होती है । उनके सहयोग से मटियानी को लीडर-प्रेस की कैण्टिन में जूठे बर्तन-प्लेट धोने का काम मिल जाता है, परन्तु सपनों में खोए रहने के कारण एक प्लेट टूट जाती है और वहां से भी उनको निकाला जाता है ।

उसके बाद भूखे-प्यासे प्लेटफार्म पर पड़े रहते हैं । इस ठण्ड से बचाव के लिए किसीके मकान के कोने में दुबककर बैठते हैं । मकान-मालिक को उन पर शक होता है । वे उसे पुलिस के हवाले करते हैं । बहादुरगंज पुलिस थाने के पुलिस-कर्मी उनके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार करते हैं । दूसरे दिन फिर भाई शमशेर के पास पहुंचते हैं । शमशेर उन्हें कटु पर खरी बातें कहते हैं और इलाहाबाद के ही एक महाकवि के नाम चिट्ठी लिखकर उनको उनके पास भेजते हैं । शमशेर की चिट्ठी के बावजूद वे महाशय शैलेश को अपमानित करके अपने घर से निकालते हैं । वहां से किसी तरह मुजफ्फरनगर पहुंचना, वहां किसी सज्जन के यहां महीनों जूठे बरतन घिसना, झाडू-पोंचा से लेकर मैडम के पेटिकोट-ब्लाउज तक धोने का काम करना ; वहां से फिर दिल्ली पहुंचना, दैनिक "हिन्दुस्तान " के भाई ब्रजमोहन शर्मा से पांच रूपये उधार लेकर बिना टिकट के बम्बई पहुंचना, वहां कई-कई बार मुंबई की पुलिस चौकियों में पड़े रहना ; मुंबई की फुटपाथी-जीवन का अनुभव ; वहां पर कुलियों, मजदूरों, भिखमंगों, उचक्कों, उठाईगिरों, गुण्डों, चोर-बदमाश समझे जाने वाले लोगों से भिन्न मिलना और उनके भीतर के कुंदन को जानना-समझना । यही उनकी "बोम्बे युनिवर्सिटी " है । इसी युनिवर्सिटी की शिक्षा-दीक्षा-अनुभवों ने उनको लेखक बनाया है । घोर निराशा के क्षणों में एक बार आत्महत्या

तक का प्रयास वे करते हैं । किन्तु उसी प्रयास से जनमता है एक संकल्प-बल जो उनको एक भीष्म-प्रतिज्ञा की ओर प्रेरित करता है । वे "श्रीकृष्ण पुरी हाउस " में "छोकरे " की नौकरी पर लग जाते हैं और दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं कि यहां तब तक डटा रहूंगा जब तक एक मसिजीवी लेखक के रूप में स्थापित नहीं हो जाता हूं । उसी प्रतिज्ञा पर कायम रहते हुए वे आठ रुपये से बीस रुपये तक की तरक्की करते हैं । अन्ततः वह सपनीला -रूपहला क्षण आ पहुंचता है, जब मटियानी भाईश्री नन्दकिशोर मित्तल के आग्रह पर उस माहौल से बाहर आते हैं । सन् 1956 के दिसम्बर में मुंबई को सलाम करते हुए वे पुनः मादरे-वतन पहुंचते हैं । तब तक एक लेखक के रूप में वे अपनी कुछ-कुछ पहचान बना लेते हैं और उसके बाद ‡ मृत्युपर्यन्त § 24 अप्रैल, 2001 § लेखन को ही आजीविका का साधन बनाकर निरंतर जूझते और जूझते हुए प्रेमचन्द की कोटि के लेखक बन जाते हैं ।

लेखन को आजीविका का साधन बनाने के कारण वे पत्रकारिता का व्यवसाय चुनते हैं । उसके लिए विज्ञापन आदि जुटाने के लिए वे दर-दर की ठोकरें खाते हैं, पर इसके कारण ही कुछ समानधर्मा सखी साहित्य-प्रेमियों से उनका सम्पर्क होता है जिसके कारण वे अपनी साहित्य-साधना को अग्रसरित करते हुए अपनी चेतना के दीये को निरंतर प्रज्वलित रख सके हैं । अपनी इस यात्रा में वे असत्य, अनुपयुक्त, विवेकहीन, न्याय-हीन, मानवता-विरोधी किसी भी प्रवृत्ति के साथ कभी समझौता नहीं करते । असाहित्यिक आंदोलनों से भी वे नहीं जुड़ते । साहित्य में "गिरोहबाजी" के वे परम विरोधी थे और शायद इसलिए वे अपनी एक अलग पहचान बना सके हैं और कबीर की उस उक्ति को सार्थक कर रहे हैं कि " हम न मरि हैं, मरिहैं संसारा ×ॆ " । मटियानीजी को मिटानेवाले तो मिट गxxx गये, पर मटियानीजी तो मृत्यु के बाद और भी सशक्त होकर हिन्दी कथा-साहित्य पर छा xxx रहे हैं । बड़े-बड़े साहित्यकारों की भी xxx शेह-शरम रखे बिना उन्हें खरी-खरी सुनाना ; खब्ती की सीमा तक किसी चीज़ के पीछे पड़ जाना और

दोस्ती और दुश्मनी को बड़ी खूबी के साथ निभाना कोई मटियानीजी से सीखे । [12] मटियानी जी की उपर्युक्त बात के संदर्भ में मुझे मेरे निर्देशक का एक शेर याद आ रहा है —

" सबसे ऊंची शाख पर नीड बना रखा है ;
नहीं दोस्तोंनि दुश्मनों ने ज़िन्दा रखा है । " [13]

मटियानीजी की उक्त संघर्ष-यात्रा के सन्दर्भ में दो महानुभावों के कथनों का उल्लेख करना अपरिहार्य है । एक कथन है । बाड़ेछिना के प्रधान अध्यापक लक्ष्मणसिंह गैलकोटीजी का जिनका मटियानीजी की शिक्षा-दीक्षा में बहुत बड़ा योगदान है और जिसे हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में लक्षित कर चुके हैं । यथा —

" रमेश ! , तुम्हारे प्रति न जाने कैसा एक अनिर्वचनीय मोह हो गया है मुझे । न जाने मुझे क्यों ~~xxxxxxहै~~ ऐसा लगता है कि तुम्हें दुलार और प्रेरणा की पूंजी देनी चाहिए । न जाने मुझे ऐसा क्यों लगता है , तुम्हारे हाथ में कुल्हाड़ी , सिर पर लकड़ी का बोझा देखते ही , कि तुम्हारी पहुंच इनसे कहीं बहुत परे तक होनी चाहिए । ... और मुझे ऐसा भी लगता है कि तुम अपनी कुम-परंपरा को उजागर करोगे । इसलिए यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम्हें शिक्षा के वे सोपान दिए जाएं , जो तुम्हें एक बहुत ऊंची मंजिल तक ले जा सकें । इतनी ऊंची मंजिल तक कि तुम्हें "जुआरी का बेटा " कहकर चिढ़ाने वाला , तुम्हारे प्रति आदर से झुक जाए , कि कांटों में खिलनेवाला फूल , वास्तव में , और फूलों की अपेक्षा अधिक सुगन्धि बिखेरता है । " [14] और आज हम देख सकते हैं कि एक "जुआरी का बेटा " और "बूचड़ का भतीजा" हिन्दी कथा-साहित्य का एक मूर्धन्य लेखक बन चुका है । गैलकोटीजी की बात "ब्रह्मवाक्य" सिद्ध हुई है ।

दूसरी बात इलाहाबाद में भाईश्री शमशेरबहादुरजी की है —

" भई , रमेश , सीधी-सी बात यह है कि यदि तुम ईमानदारी से ऐसा अनुभव करते हो और तुम्हें अपनी प्रतिभा के प्रति कोई अटूट आस्था नहीं

तो तुम साहित्यकार बनने के मोह से मुक्त हो जाओ । पूरा ध्यान रोजी-रोटी खोजने पर केन्द्रित करो । इससे तुम्हारा मानसिक क्लेश भी कम हो जायेगा । .... और यदि लिखना हो , तो फिर इस अपराजेय आस्था के साथ कि तुम्हें साहित्यकार ही नहीं , महान साहित्यकार बनना है । जितना महद् संकल्प करोगे , उतना ही ऊपर उठ सकोगे , मगर उसी अनुपात में घोर विपत्तियां भी झेलनी होंगी । जैसी कुछ तुम्हारी स्थिति है , उसे देखते हुए यह आवश्यक है, कि तुम कुछ ठोस निश्चय कर लो , अन्यथा कई व्यर्थ की विपदाएं तुम्हें घेर लेंगी ।" 15

और मटियानीजी ने सचमुच " अपराजेय आस्था " के साथ साहित्यकार बनने का संकल्प किया और भाईश्री शमशेर के शब्दों को सार्थक करते हुए आज वे हिन्दी के एक महान कथाकार बन चुके हैं । आलोचक उनकी तुलना गोर्की , चेखोव और जैक द लण्डन के साथ करने लगे हैं ।

मटियानीजी की कुछ साहित्यिक अवधारणाएं :

साहित्यिक अवधारणाएं भी लेखक के व्यक्तित्व का एक अंग ही होती है और जिसका प्रभाव भी उसकी भाषा-शैली पर लक्षित किया जाता है । अतः यहां उनकी कतिपय अवधारणाओं को उद्धृत किया जा रहा है —

§1§ कोई लेखक यदि नैतिक और सामाजिक मूल्यों के पक्ष में नहीं है , तो अपने इस "आत्मक्षय " का अभिशाप भी उसे ही भोगना है । 16

§2§ जो साहित्यकार यह कहे कि उसके द्वारा कहे हुए शब्दों को उसके आचरण में न तलाशा जाए , उसे यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि उसे "शब्द" के प्रयोग का नैतिक अधिकार नहीं है । "शब्द" सिर्फ लिपि में नहीं , अर्थ में नहीं , अपने नाद और

सत्व में भी होता है और इसीलिए सिर्फ वहीं साकार तथा सार्थक होता है , जहाँ उसे अपने को धारण करने वाला आचरण मिलता है , क्योंकि "सत्व" की पहली माँग "आचरण " की होती है । [17]

§3§ दूसरों पर दया करने के अहंकार से दूषित मनोवृत्ति और कुछ नहीं , यदि वह "पहले लोगों को उत्पीड़न का आखेट बनाओ और फिर अपने को उनके बीच करुणाकर के रूप में प्रतिष्ठित करो " की धूर्तता में से उदित हुई हो । अनाथालय , धर्मशाले , मन्दिर , ट्रस्ट, दातव्य औषधालय और विद्यालय — ये सब पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के पैशाचिक चरित्र पर मानव-कल्याण की मुहर लगाने के सुनियोजित षड्यन्त्रों की उपज होते हैं । [18]

§4§ मार्क्सवाद एक विचार-दर्शन है और कोई भी विचार-दर्शन साहित्य के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को विस्तृति दे सकता है , यदि उसे साहित्य पर न लादा जाय । संस्कृति और साहित्य , ये दोनों जितने समन्वयी , उतने ही उदात्त होते हैं । [19]

§5§ सामाजिक , धार्मिक , सामूहिक और राजनीतिक मापदण्डों द्वारा रेखांकित सारी चरित्रहीनताओं , सारी भ्रष्टताओं से गुजर जाने के बावजूद यदि कोई व्यक्ति रचनाशील रह सके , तो उससे बड़ा चरित्र-वान कोई हो ही नहीं सकता । [20]

§6§ यहाँ यह पहले ही स्पष्ट किया जाए कि शिविरबद्धता व्यक्ति के इर्दगिर्द हो या सिद्धान्त के — इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता । और यदि यह निरूपित करने की कोशिश की गई है कि सिद्धान्तवाद से संवेदना की क्षति होती है , फिर चाहे वह कला और संस्कृति का सिद्धान्त हो या मार्क्सवाद या जनवाद , तो इस बात को दृष्टिगत रखते हुए ही कि "सिद्धान्त" कोई "संवेदना" के क्षेत्र से परे की वस्तु नहीं , लेकिन जहाँ सिद्धान्त और संवेदना में सम्यक् समन्वय न हो , बेहतर लिखे जाने की गुंजाइश भी नहीं होगी । [21]

§7§ एक लेखक की हैसियत से अपने भाषिक असामर्थ्य का साक्षात्कार किसी लेखक को तब होता है, जब भाषा की सारी पूर्व-कृत अभ्यस्तता और पारंगतता अपने ही अनुभवों के सामने अपर्याप्त और बौनी पड़ने लगती है। अपने भाषिक असामर्थ्य के इस साक्षात्कार के बाद ही कोई लेखक " लिखने की भाषा " और "मनुष्य होने की भाषा " के बीच xxxxxx के फर्क को पहचान पाता है।[22]

§8§ अपने बीते हुए समय को "दुर्दिन " कहते हुए, मुझे हिचक ही हो सकती है, क्योंकि अपने अतीत के स्मरण करने योग्य जो कुछ मेरी स्मृतियों में रह गया है, इसी कठिन समय में अर्जित किया हुआ है। इसी कठिन समय से गुजरते हुए मुझे मनुष्य के सिर्फ बाहर ही नहीं, भीतर तक भी झांकने के अवसर मिले हैं। लोगों से जितना दुर्व्यवहार और अपमान मिला है, इससे कम संवेदनशीलता और आत्मीयता भी नहीं मिली है।[23]

§9§ मेरी मान्यता यह रही है कि यदि साहित्यकार स्वयं शोषित या पीड़ित न भी रहा हो, तो भी उसे शोषितों -पीड़ितों का पक्षधर होना चाहिए, न कि शोषकों का। वर्ण-वर्ग व्यवस्था और वादों से परे, साहित्यकार की एक अलग स्थिति होती है, जहां वह तटस्थ भाव से साहित्य-सृजन के अतिरिक्त, " क्रौंचवध " की करुणा से संवेदित और व्याध की हिंसा-वृत्ति xx के प्रति क्रुद्ध होता है। वाल्मीकि-धर्मा साहित्यकार यदि पीड़ितों-xx अभिशप्तों के प्रति संवेदना-सहानुभूति नहीं रखता, तो वह जन-कल्याण के संगमरमरी सोपानों से लुढ़ककर, जन-शोषकों की कुत्सित शरण में ठौर पाता है और उसका स्वधर्म सिर्फ यशार्जन, धनार्जन और पुस्तकों के प्रकाशन तक ही सीमित होता है।[24]

§10§ मैं कहना चाहता हूं अपने सहधर्मियों से कि साहित्य सिर्फ विदेशी साहित्यकारों की कृतियों, काफी हाउसों, गोष्ठियों और कमरों की दीवारों तक ही सीमित नहीं है। साहित्य हमारे देश की मिट्टी, संस्कृति, खेत-खलिहानों, किसानों-मजदूरों और गांव-

शहरों में सर्वत्र है । विच्युतियों , कुण्ठाओं और कलात्मक व्याधियों से ग्रस्त नायक-नायिकाओं से इतर भी , यहां करोड़ों ऐसे चरित्र हैं , जिनके मेहनती हाथों के स्पर्श से मिट्टी में अन्नपूर्णा फसलें लहरा उठती हैं , जिनकी रसार्द्र भावनाओं के ज्वार से आत्मा का समुंदर लहराने लगता है और जिनकी करुणा-विवशता से संवेदित होकर आँखों का पानी अग्निखण्डों का आकार ग्रहण करने लगता है । कला और शिल्प की संभावनाएं सिर्फ फ्रायडीय-मनोग्रन्थियों से उद्भ्रान्त चरित्रों के चित्रण तक ही सीमित नहीं है ।[25]

§11§ इसमें कुछ अतिशयोक्ति न मानी जाए , यदि कहा जाय कि आज जो हमारा लोकतंत्र एक भयावह रूप से अभिशप्त और विकृत स्थिति में पहुंच गया है , इसमें इस देश के कालाबाजारियों , पूंजीनिवेशियों और इनके जरखरीद राजनेताओं से कम संघातक भूमिका इस देश के उन लेखकों , कलाकारों , पत्रकारों तथा अन्य बुद्धिजीवियों की कदापि नहीं है , जिन्होंने किसी आतंक में नहीं , बल्कि सत्ता-केन्द्र के पद-पुरस्कार और कृपानुदानों से वंचित न होने की अवसरवादिता में पूरे देश के साथ विश्वासघात किया है । ये ही लोग हैं , जिन्होंने राष्ट्र और मनुष्य के ज्वलंत प्रश्नों को सत्ताकेन्द्र के स्वच्छंद आखेट की वस्तु बना दिया ।[26]

§12§ मनुष्य में जब तक प्राण रहते हैं , तब तक वह जल में डूबता भी शब्द करता है — शब्द जब जाता रहे , तब शव बन जाता है । और तब न उसे जल के प्रश्न व्यापते हैं , न थल के । न दिशा के न काल के । न दृष्टि के न गति के । संवेदना के जाते रहते ही उसमें शब्द की चेतना भी जाती रहती है । मनुष्य का शैतान होना यही है — शब्द की चेतना का जाते रहना ।[27]

§13§ साहित्य को उसकी सामाजिक प्रासंगिकताओं से काटकर अल्पसंख्यक बुद्धिजीवियों के विलास और रोजगार की वस्तु बना देमर दिये जाने का यह बिल्कुल स्वाभाविक परिणाम होगा कि वह समाज के

वृत्त से हटकर, समाज-विरोधी व्यवस्था का उपजीव्य बनकर रह जाय।[28]

§14§ कैसे देख लिया होगा प्रेमचन्द ने कि अंग्रेजों के मानसपुत्रों के हाथ पड़ गया देश, तो इसे कहां पहुंचा देंगे ये अस्मिताफरोश ? जिनके लिए कि विद्या समाज को विकृत करने का उपकरण-मात्र है।[29]

§15§ समर्थ लेखकों की भाषा में हमें ये पांचों तत्व प्रभूत मात्रा में सुलभ होते हैं — भूमि, जल, अग्नि, आकाश और हवा। भूमि जो हमें आधार देती है, जल जो हमें प्रवाह देता है, अग्नि जो हमें आलोक देता है, आकाश जो हमें विस्तार देता है — और हवा, जो हमें स्पर्श देती है। श्रेष्ठ साहित्य हमें एक समानान्तर सृष्टि में ले जाता है।[30]

§16§ और लेखक कुछ नहीं करता, सिवा इसके, कि मनुष्य में सारे संघातों के बाद भी शेष रह गये को इस तरह उपस्थित करता रहता है कि दृष्टांत रहे।[31]

§17§ किसी साहित्यकार का व्यवस्था के तंत्र में जाकर सुविधा-भोग में जुट जाना उतना क्षतिकारी नहीं, जितना कि अपने इस सुविधा-भोग को भी मूल्य सिद्ध करने का चातुर्य बरतना।[32]

§18§ साहित्य भी सिर्फ वही बच सकता है, जिसमें दिखाई पड़ता है मनुष्य — अपनी पूरी शक्ति से स्वयं से सवाल उठाता हुआ।[33]

§19§ कविता कवि के सतत संवेदनात्मक संघर्ष, सामाजिक सरोकार और काव्य-विवेक में से सम्भव हैxxxx होती है।[34]

§20§ साहित्य में व्यक्तिगत या दलगत नहीं, वस्तुगत आकलन जरूरी होता है। पूर्वग्रह या अनुग्रह, दोनों ही गलत नतीजों पर ले जाते हैं।[35]

§21§ संवेदना शुद्ध सामाजिक वस्तु है — समाज के बिना इसका कोई अस्तित्व नहीं, क्योंकि यह बरते जाने पर ही बढ़ती है, और जब बढ़ती है, तब ही पूरे प्रभाव में प्रकट होती है। यही कारण है कि समाज को जितना कवियों ने जाना, कोई नहीं जान सका, क्योंकि

संवेदना के सवालों से शून्य ज्ञान हमेशा अधूरा होता है — अधूरा और घातक । 36
§ यहाँ मटियानीजी ने कवि शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है , जिनका भी संबंध "शब्द" से हैं , वे सब कवि हैं । §

उपर्युक्त साहित्यिक अवधारणों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है , उनसे भी मटियानीजी की भाषा-क्षमता का पता चलता है और उपन्यास में जहाँ कहीं भी उनका चिंतन-पक्ष उभरकर आया है , वहाँ हम मटियानीजी मटियानीजी कितने बड़े शैलिकार हैं उस तथ्य से भी अवगत होते हैं । मटियानीजी की ये अवधारणाएं उनके व्यक्तित्व को भी उभारनेवाली हैं । कहा भी गया है — " स्टाइल इज़ द मैन " ।

मटियानीजी के उपन्यासों की कथावस्तु : भाषिक-संरचना के परिप्रेक्ष्य में :

मटियानीजी की कथा-यात्रा लगभग चार-पाँच दशकों में विस्तृत है । मटियानीजी के प्रमुख उपन्यास हैं — /1/ हौलदार , /2/ चिट्ठीरसैन , /3/ चौथी मुट्ठी , /4/ एक मुठ सरसों , /5/ बोरीवली से बोरीबन्दर तक , /6/ कबूतरखाना , /7/ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई , /8/ छोटे-छोटे पक्षी , /9/ चन्द औरतों का शहर , /10/ आकाश कितना अनंत है , /11/ जलतरंग , /12/ नागवल्लरी , /13/ रामकली , /14/ बर्फ चुकने के बाद , /15/ गोपुली गफूरन , /16/ मुख सरोवर के हंस , /17/ उगते सूरज की ~~क्षम~~ किरण , /18/ पुनर्जन्म के बाद , /19/ मुठभेड़ , /20/ बावन नदियों का संगम , /21/ अर्द्धकुम्भ की यात्रा । "जलतरंग" को "माया सरोवर " , "सर्पगंधा" को "नागवल्लरी " तथा "चिट्ठीरसैन" को "सुयाल-कोशी " के रूप में भी प्रकाशित किया गया है । उक्त उपन्यासों में से भाषा-शैली की दृष्टि से जो उपन्यास महत्वपूर्ण हैं , उनकी चर्चा यहां करने का हमारा उपक्रम है ।

§1§ हौलदार :

"हौलदार" उपन्यास अल्मोड़ा जिले के "धौलछीना" गाँव की आंचलिक पृष्ठभूमि पर आधृत उपन्यास है । इसकी भूमिका में ही लेखक

लेखक उसकी भाषा के संदर्भ में कुछ संकेत देते हैं -- "हौलदार" और "चिट्ठी-रसैन" की भाषा-भूमि में आंचलिक शब्दों के बुरूंश फूल खिलें, यह लेखक का उद्देश्य रहा है। मेरी अपनी आंतरिक इच्छा रही है कि पाठकों को आंचलिक शब्दों के बवण्डर से बहकाने की नहीं, बल्कि उन्हें कुमाऊं की आंचलिक कथा-निधियों और शिल्प-शैलियों xxx का परिचय देने की चेष्टा करूं। मेरा आग्रह आंचलिक शिल्प के प्रस्तुतीकरण के प्रति अधिक है, ताकि हिन्दी साहित्य को कुछ नयी कथा-शैलियां मिल सकें।" [37]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कुमाऊं के पार्वतीय अंचल की कथा डुंगरसिंह नामक एक पात्र के द्वारा अंकित की है। उपन्यास के केन्द्र में डुंगरसिंह है, परंतु कथा का वृत्त तो रचा गया है उस अंचल के लोक-जीवन से। डुंगरसिंह धौलछीना गांव के थोकदार जमनसिंह के मित्र मेहनरसिंह का तीसरा बेटा है। पहला बेटा चनरसिंह चौबटिया पड़ाव पर दुकानदारी कर रहा है। दूसरा देवसिंह हरकारगिरी में लगा हुआ है। माता-पिता काल-कवलित हो गए हैं। खेतीबाड़ी तथा घर के अन्य छोटे-मोटे काम उसकी दो भाभियों ने संभाल लिए हैं, जिनके नाम हैं -- खिमुली और भिमुली। डुंगरसिंह सबसे छोटे हैं, अतः छैला बने जोड़, बेर और भांति-भांति के छंद सुनाते हुए मटरगश्ती छांट रहे हैं। दूर-दराज के गांव तथा आदिवासी विस्तारों में आज भी लोकगीत गाते हुए युवक आपको मिल सकते हैं। तो डुंगरसिंह भी वहीं कर रहे हैं। खिमुली और भिमुली को डुंगरसिंह एक आंख नहीं सुहाते। उनकी नजर में डुंगरसिंह "काम के न काज के दुश्मन अनाज के" हैं, अतः जब-तब अपने "कुवचनिया" व्यंग्य-बाणों से आहत करती रहती हैं। ऐसे में एक घटना घटित होती है। डुंगरसिंह नरूली नामक युवती को छेड़ती करते हैं। नरूली गांव के किसनसिंह नेगी की बहू और चतुरसिंह हौलदार की पत्नी है। नरूली डुंगरसिंह को मां-बहन की गालियां सुनाती है। यह बात किसी तरह भौजियों तक पहुंच जाती है और डुंगरसिंह के खिलाफ उन्हें मानो "बरमास्त्र" मिल जाता है और सामने पड़ते ही उसे छेड़ती है -- "टेकुवा बनोगे देवरिया?" [38] जिस स्त्री का पति बाहर गया हो उससे दोस्ती गांठने को "टेकुवा" कहा जाता है।

अतः डुंगरसिंह अपनी भौजियों के व्यंग्य-बाणों से परेशान होकर उन्हें सदा-सदा के लिए चुप करा देने की इच्छा से फौज में भर्ती हो जाता है। नरूली का पति फौज में "हौलदार" (हवालदार) है, अतः डुंगरसिंह भी "हौलदार" बनना चाहता है और इस प्रकार भौजियों तथा नरूली को बता देना चाहता है। किन्तु भाग्य की विडंबना यह है कि वह अपनी ही गोली से लंगड़ा होकर गांव लौट आता है। फौज से उसे डिस्चार्ज किया गया है। उसकी गलती थी इसलिए न उसे मुआवजा मिलेगा न पेन्शन, क्योंकि फौज में वह कुल छः महीने रहता है, उसमें भी तीन महीने नौ दिन अस्पताल में। अपनी टूटी टांग और उसके पीछे के अपने "बौड़मपन" को छिपाने के लिए उसका उर्वर-मस्तिष्क कुछ "टांग-बचाऊ-गप्पें" सोच लेता है। कश्मीर-फ्रण्ट पर बहादुरीपूर्वक लड़ते हुए उसने अपनी टांग गवायीं है ऐसा वह गांव के अनपढ़ देहातियों को कल्पना के अनेक रंग भरकर सुनाता है। इस प्रकार पन्द्रह दिन में तो डुंगरसिंह "हौलदार" थोल्छीना गांव के हिरो हो जाते हैं।

मटियानीजी का यह प्रथम उपन्यास है, पर उसका नायक डुंगरसिंह एक शातिर-दिमाग, धूर्त, कांइयां, बदमाश, दुष्ट और फरेबी है। आते ही वह थोकदार जमनसिंह के यहां जाता है क्योंकि उसे मालूम है कि जमनसिंह के यहां उनकी बहू लछमा का शासन है। जमनसिंह के बेटे जसौतसिंह की मृत्यु बाघ के फाड़ खाने से हुई थी। अतः डुंगरसिंह की नजर उसकी विधवा पत्नी जैंता पर है। उसके "अदूधिल उरोज" तथा "एकवसना" देहयष्टि से वह बुरी तरह से आहत है। थोकदार जमनसिंह और मेहनरसिंह के परिवारों के बीच अच्छे संबंध थे, परन्तु अपनी कूटनीति से वह उसमें दरार पैदा कर देता है। खमुली-भिमुली से बदला लेने हेतु अपना हिस्सा अलग कराके वह दुकान करना चाहता है। मकान के लिए वह जमनसिंह को पटा लेता है, क्योंकि उनके पास रहकर जैंता को फंसाने में आसानी हो सकती है। दूसरी तरफ नरूली के पति चतुरसिंह के मरने की भी वह कामना करता है, ताकि नरूली का मान-मर्दन हो। नरूली की

प्रसव-पीड़ा के समय वह सोचता है कि "स्वैरगिरी" (दायन का काम) करने वाली दुर्गुली पंडत्याण समय पर न पहुँचे तो अच्छा । इस प्रकार डुंगरसिंह एक शातिर-दिमाग खलनायक प्रकृति का व्यक्ति है, हालांकि उपन्यास के अन्त में लेखक ने उसके मानसिक विकारों का परिष्कार कर दिया है ।

डुंगरसिंह की इस कथा के साथ-साथ लेखक ने जमनसिंह और मेहनरसिंह की प्रेम-कहानियां, चतुरसिंह नेगी और उसके द्वारा भाखी गयी मानताएं, रमुवा का फाईनल (प्रायमरी सात) में पास हो जाना, दुर्गुली पंडत्याण — जिसे लोग "भैंसिया पंडत्याण" भी कहते हैं — की कहानी, चनरसिंह की दुकानदारी के चर्चे, गोविन्दी और पद्मसिंह पोस्टमैन की प्रेम-कहानी, उमादत्त और मानसिंह की लड़ाई, गोपुली काकी और हरकसिंह के डंगरविद्या (ओझागिरी) की आड़ में चलनेवाले मधुर-मोहक मिथुन-संबंध जैसी अनेक घटनाएं उपन्यास के आंचलिक शिल्प को उभारती हैं ।

यहाँ उपन्यास की वस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है । कुछ शब्दों के संकेत तो हमने उपन्यास की कथावस्तु की चर्चा के दौरान ही दे दिए हैं । उपन्यास में ऐसे अनेक शब्द, मुहावरे तथा कहावतों का प्रयोग हुआ है, जिससे उसके आंचलिक कथावस्तु को उकेरा गया है । यथा— "फसकिया" (वार्ताप्रिय), "बोकिया" (बकरा), "सरभिस" (सर्विस), दोयमचित्ती" (द्विविधा), "मुख-बोलन्ती" (बोल-चाल), "बोज्यू" (बाबूजी), ठुलिब्वारी" (बड़ी बहू), "मुंह से नहीं भेल से कहना", सिर में जूता मारना, "क्या राजदरबार में क्या देव-दरबार में", "नहीं ~~हरे~~ खानेवाली बहू-बेटियां तो बागेश्वर के मेले में पकड़ी जाती हैं," सवार सफर के लिए तैयार खड़ा है मगर घोड़ी को घास चरने से फुरसद नहीं", "न आगे आनसिंग न पीछे पानसिंग टिकमसिंग की नजर अपनी ही टांग पर" तथा "देश जाने से बेटा और खेत जाने से बैल सुधरता है ।" आदि-आदि ।[39]

इस उपन्यास का हरकसिंह लोकदेवता सेमराजा का डंगरिया है । उदेराम उसका जंगरिया है । हरकसिंह की देह में आये सेमराजा जब प्रस्थान करते हैं तब उदेराम "कैलाशप्रस्थानी" ~~xअबलरम~~ अवधाण

§छंद§ ललकारता है । भाषा की आंचलिक छटा यहां प्रत्यक्ष होती है । यथा — " हेर , बेला हुई अबेर , मेरे देवता , मेरे महादेवता , पद्मासनी सेमराजा । ... नरलोक में अवतार लिया , धरती धरमराज को धन्य धन्य कर गया । गोठ की गैया , गोदी के बालक , धरती मैया को कल्याणमुखी हो गया ... नाचा , कूदा ... नर-वानरों को मंगलमुखी हो गया ... हे मेरेक आसनधारी देवता । अस्तमुखी कैलाशवासी हो जा ... कि चन्द्रमुखी रात्रि बेला में , अपनी अवतार-गाथा के अंतिम अक्षत आखरों में लगती समाधि , मुंदती पलकों में स्थान देकर सबको दाहिना हो जा मेरे स्वामी । " 40

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की भाषिक-संरचना उसकी आंचलिक कथावस्तु के अनुरूप है ।

§2§ चिट्ठीरसैन :

"चिट्ठीरसैन" पोस्टमैन या हरकारा को कहते हैं ।×छ्रुत× प्रस्तुत उपन्यास भी आंचलिक कथावस्तु पर आधारित है । इसका नायक पीताम्बर "चिट्ठीरसैन" है । मटियानीजी की एक प्रवृत्ति यह है कि वे अपने लिखे हुए को नये-नये ढंग से लिखते रहते हैं । राजकपूर के संगीत की भांति उनकी पात्र-सृष्टि भी अलग-अलग उपन्यासों तथा कहानियों में गुंजित-अनुगुंजित होती रहती है । "चिट्ठीरसैन" उपन्यास के बीज हमें "हौलदार" उपन्यास में गोविन्दी और पदमसिंह पोस्टमैन की कहानी में मिलते हैं । "मेरी तैंतीस कहानियां " में संकलित रमौती कहानी में भी प्रस्तुत उपन्यास के बीज उपलब्ध होते हैं । इस उपन्यास को बाद में लेखक ने "सुंयाल-कोसी " नाम से भी प्रकाशित करवाया है । हरगांव के आनसिंग के दो बेटे हैं — नाथू हवालदार और मोहनसिंग । नाथू हवालदार फौज में है , अतः वह अपने पिता से आग्रह करते हैं कि मोहनसिंग भी लाम में भर्ती हो जाए और सहुम तदनुसार वह फौज में भर्ती हो जाता है । इसी मोहनसिंग से रमौती की शादी हुई थी । रमौती बहुत ही सुंदर थी । हरगांव में तीस साल के बाद ऐसी

"सुन्दर-जवान दुल्हन " आयी थी । परन्तु जैसा कि जैनेन्द्र कृत "त्यागपत्र" में कहा गया है कि ईश्वर जब किसीको रूप देता है तो उसका मूल्य किसी-न- किसी तरह वसूल ही कर लेता है । मोहनसिंह अब छुट्टियों में आने लगा था । रमौती उन कुछ दिनों के प्यार में "लमलोट" हो जाती है । मोहनसिंग रमौती को कितना चाहता है यह उसके पत्र की कुछ पंक्तियों से ज्ञात होता है । भाषा की दृष्टि से भी इसका महत्त्व है, अतः यहाँ उसे उद्धृत कर रहे हैं —

" जब घर से परदेश को निकला था, तब तेरी याद आयी थी । वह ऐसी रह गई कि फरण्ट की इस लड़ाई में रैफलों-मशनिगनों की दनदनाहट के बीच भी हमारे-तुम्हारे गांव की गौरैया-सी चहक, जाई-चमेली की कली-सी महक जाती है । सन्यासी के हाथ के चिमटे जैसी तुम्हारी याद, ठौर-ठौर साथ देती ~~हहै~~ रही है रमौ ! बन्द कली के चक्कर काट के उड़े भँवरे-सा मेरा मन कहीं नहीं लगता । लाम के हफसरों ने कश्मिर फरण्ट पर भेज दिया । इस बलि-वेदी से बच निकला तो छुट्टी पर सीधे घर आऊंगा और तुझे अपने साथ लाकर यहाँ फेमिली-क्वाटर में रखूंगा ।" [4]

परन्तु एक दिन फ्रण्ट से चिट्ठीरसैन पीताम्बर मोहनसिंग की मौत का "जैहिन्दी" तार ले आता है और तब रमौती के "आकाश देखनी, ~~आस~~ पाताल हेरनी " हो जाती है । "चरेवा-चूड़ियाँ " तोड़ते समय उसका हर आंसू आंखों से टूट-टूट कर गिरता है । इस प्रकार रमौती का वह "बुरूंश का फूल " असमय ही बिखर जाता है । रमौती की भाग्यरेखा सुंयाल-कोसी की तरह बार-बार बलखाने लगती है । अठारह-यौवन की मझधार में वह पीताम्बर चिट्ठीरसैन की डोंगी में चढ़ तो जाती है, पर पीतांबर रस-लोभी भँवरा सिद्ध होता है । जीवन की चोटी से वह इस प्रकार लुढ़कती है कि लोग उसे थामने के स्थान पर लात ही जमाते जाते हैं । अतः अन्त में सुंयाल-कोसी की गोद में ही उसे विश्रान्ति मिलती है । इस प्रकार उपन्यास का वह बादवाला शीर्षक ही अधिक सार्थक लगता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में रमौती की इस करम-कहानी के साथ-साथ अन्य अनेक अवान्तर कथाएं भी चलती है जिनसे उपन्यास का आंचलिक कथापट बुनता चला जाता है । किन्तु यहां हमारा लक्ष्य उपन्यास में प्रयुक्त भाषा है । अतः उसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है । किशोरावस्था में रमौती ढोर-डंगर चराने जाती है । उस मबxकाx समय का रमौती का एक "डंगर-साथी" नंदनिया हरगांव के बारे में जो जोड़ सुनाता है वह इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । यथा —

" गांवों में गांव यह हरगांव, ठमx ठण्डा पानी, ठण्डी छांव । हरगांव की धार में बज गयी बीन, गांव तो एक मगर बाखली तीन ... गुमानी थोकदार ने बिछायी खाट, उसमें से निकला मघनिया भाट ... खिमसिंग ढूंखार ने बजा दिया हुड़का, उसकी घरवाली हुई नदुली नकसुकड़ा ... नदुली नकसुकड़ा का ढोल जैसा पेट, उसमें से निकला नरैणसिंग सेठ ... नरैणसिंग सेठ ने खोल दी दुकान, उसकी घरवाली ठहरी दुरौपती बान (सुन्दरी) ... दुरौपती बान ने जो करा श्रृंगार, उसमें फंस गए पटवारी पेशकार ।"[42] यों यह मनोविनोद यह हरगौं-पुराण घण्टों चलता रहता है ।

(3) सुखसरोवर के हंस :

"सुखसरोवर के हंस " मटियानीजी का एक भिन्न धरातल का उपन्यास है । सामाजिक यथार्थ से उसका केवल इतना संबंध है कि यह कुमाऊं प्रदेश की एक लोककथा — अजित बफौल या "बैस भाई बफौल " पर आधारित है ।[43] कथा के मुख्य सूत्र इस प्रकार है — गढ़ी चम्पावत का राजा कालीचन्द संतान-सुख की प्राप्ति के लिए रानी डोटियाली रूपाली से आठवां विवाह करते हैं और उसके प्रखर रूप और उद्दाम यौवन के आगे सबकुछ विस्मृत कर देते हैं । परंपरागत रूप से चली आ रही "बफौल-ढुंगी " की पूजा उस वर्ष नहीं हो पाती । बफौल-बंधु नाराज होकर चले जाते हैं । जब राजा कालीचन्द को यह वृतान्त मालूम होता है तब उसकी मोहनिद्रा टूटती है और वह "बफौल-ढुंगी " की पूजा का आयोजन

करवाता है । इधर पंचनाम देवों के मानस-पुत्र चार मल्ल अपनी दैहिक शक्ति के कारण निर्दोष लोगों को प्रताड़ित करना शुरू कर देते हैं । वे वीरपाली में बफौल बंधुओं को भी चुनौती देते हैं । बफौल बंधु उन मल्लों को चुनौती देते हैं कि यदि उनमें शक्ति है तो वे "बफौल-ढुंगी" को गुलेल पर चढ़ाकर दूर फेंक दें । "बफौल-ढुंगी" को गुलेल पर चढ़ाना तो दूर, वे उसे उठा तक नहीं पाते हैं । लोककथा में कहा गया है कि बफौल-ढुंगी दो सौ चालीस मन की थी और बफौल-बंधु उसे गुलेल के गोले की तरह चम्पावत नगरी तक फेंकते थे । चार भाई मल्लों को एक हफ्ते तक दरवानों का काम सौंपा जाता है । इधर उनके रूप-शौर्य से आकर्षित रानी डोट-याली उनकी "बाईस सेज" सोने को कामातुर हो जाती है । बफौल-बंधु उसे रक्तधार" के स्थान पर "दूधधार" देने की याचना करते हैं । अर्थात् वे उसे "मां" का स्थान देना चाहते हैं । अपनी इच्छा की पूर्ति न होने पर रानी राजा के कान भरके उनके महल में आग लगा देती है और बफौल-बंधु जलकर राख हो जाते हैं । इस वज्रापात-सी खबर मिलते ही लली दूधकेला जो उन बफौल-बंधुओं की पत्नी है अपने मैके के गांव महरगांव पहुंच जाती है, क्योंकि उस समय वह गर्भवती थी और अपने इन बाईस वीर-स्वामियों के अंश को वह किसी तरह बचा लेना चाहती है । उसके बाद चम्पावती नगरी के दुर्दिन शुरू हो जाते हैं । चार भाई मल्ल राजा कालीचन्द तथा उसकी रानियों को सेवक-सेविका बना देता है । सभी रानियां आठ-आठ आंसू रोती हैं । रानी डोटियाली रूपाली की भी बुरी गत होती है । उधर लली दूधकेला एक बच्चे को जन्म देती है । उसका नाम अजित रखा जाता है । पराक्रम और शौर्य में वह अपने बापों का भी बाप सिद्ध होता है । अपने पिता का प्रतिशोध-ऋण चुकाने के लिए वह कृत-निश्चय था, किन्तु रानी भद्रावती (काली-चन्द की पटरानी) उससे वचन ले लेती है । अतः अजित राजा काली-चन्द और उसके पुत्र (जो उसे भद्रावती से हुआ था) को बख्श देता है । वह चम्पावत नगरी को चार भाई मल्लों के आतंक से मुक्त करता है । रानी डोट्याली को भी उसका अभीष्ट मिल जाता है । यही कथा है इस उपन्यास की ।

अतः जहाँ तक उपन्यास की यथार्थधर्मिता का प्रश्न है, यह उपन्यास उससे दूर पड़ता है। तथापि उसमें यथार्थ का एक तत्व तो उभर-कर आया ही है कि राज्य का शासन मोहग्रस्त शासकों के हाथों में सुरक्षित नहीं होता है। परन्तु इस उपन्यास का सबसे आकर्षक तत्व है उसकी शैली। इससे सिद्ध होता है कि लेखक का भाषा एवं बोली पर पूर्ण अधिकार है। "काव्य के सारे अलंकारों से मंडित यह उपन्यास यदि लोकगायकों की रमौलिया शैली में पढ़ा जाय तो उसका समुचित आनंद उपलब्ध किया जा सकता है। शब्द-शिल्पी मटियानी की भाषा-शक्ति का परिचय करानेवाला यह एक अनोखी-न्यारी शैली का उपन्यास है। इस क्षेत्र में "एकमेवोद्वितीयम्"।" 44 यहाँ उसकी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है --

" एक समय काल ने क्या करवट, पवन ने क्या दिशा बदली कि पंचाचुली पर्वतश्रेणी की गुरुस्थली में पंचनाम देवों की, भाइयों की भेंट, केदार की यात्रा हुई। पंचनाम देव कौन? गोल्ल गंगनाथ, भोला, महा-बली, हरू और सैमराजा। काली कुमाऊं, पाली पछाऊं के पांच लोक-देवता, कि पड़ती सन्ध्या जगती भोर में, जिसके नाम की पहली धूप-बाती होती है, कि पहली फूलपाती चढ़ती है, कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं। एहो पंचनाम देवो। कथा कहने का दिवस और, निशा और, कि पहले तुम्हारी सेवा में युगलहाथ नतमाथ करते हैं, कि ऊंची अटारी, नीची पटारी पर जलता दिया जलता रहे, कि रेशम की डोर, मखमली पालने में कुसुमकण्ठी बालक झूलता रहे, कि गहरे सरोवर की नीली लहरों में खिला कमल खिलता रहे, कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं। और शितल फुहार पड़ती, नशीली बयार चलती और ठण्डी पनार पड़ती रहे, कि इस कुमाऊं की धरती फूलों से महकती रहे, कि इस कथा की पावन बेला में हम तुम्हारा नाम लेते हैं। सिर से ढोक देते, पांव से लोट लेते हैं कि पड़ती संध्या जगती भोर में जिस गृहिणी ने तुम्हारे नाम का दीपक जलाया और तुम्हारे नाम की फूलपाती चढ़ायी, उसके गोठ की गैया, गोदी के बालक की उम्र बड़ी करना। जिस घर के स्वामी ने तुम्हारे नाम की पंचमुखी आरती जलाई, उसे पट्टी का

पटवार , गांव का मुखिया , जिले का कलेक्टर बनाना , कि उसका रुतबा उठाना , कुनबा बढ़ाना कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं ।" 45

यहां पर कुमाऊं प्रदेश में लोकदेवताओं का आह्वान किस प्रकार किया जाता है , उन्हें किस प्रकार बुलाया जाता है , उनके आगे किन शब्दों में प्रार्थना की जाती है , उसका वर्णन यहां के लोकगायक रमौलियों की यथार्थ भाषा में प्रस्तुत किया है । गुजरात के गांवों में भी ऐसे "जागरिये" मिलते हैं । उनकी भी ऐसी ही विशिष्ट शैली होती है , जो उपर्युक्त शैली से बहुत मिलती-जुलती है । इससे एक तथ्य यह भी सामने आता है कि समग्र भारत में लोक-जीवन की एक तर्ज मिलती है , जिसमें बहुत-से तत्व सामान्य हैं ।

§4§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई :

जिस प्रकार तथाकथित उच्चवर्ग-उच्चवर्ण या अभिजात वर्ग की वर्णसंकरता का पर्दाफाश जयशंकर प्रसाद कृत "कंकाल" उपन्यास में होता है , ठीक उसी प्रकार मटियानीजी ने इस उपन्यास में इस वर्ग की पोल-पट्टी खोलने का कार्य किया है । इसमें मटियानीजी ने नारी के दो रूपों का चित्रण किया है -- एक है सेठानी नर्मदाबेन और दूसरी है केले बेचनेवाली गंगूबाई । सेठानी एक विपुलवासनावती नारी है । ऐसी उद्दाम काम-वासना वाली स्त्रियों को अंग्रेजी में "निम्फो" कहते हैं । उनकी काम-वासना किसी एक पुरुष से तृप्त नहीं होती है । 46 सेठानी शुरू से ऐसी नहीं थी । वह भी एक सुकुमार भावना-शील नव-यौवना थी । उसके मन में भी प्रेम की हिलोरें ठाठें मारती थीं । अपने कालेज काल में वह एक युवक को प्रेम करती थी । किन्तु आर्थिक विषमता की वेदी पर उसका प्रेम चढ़ जाता है और कु. नर्मदा-बेन सेठ मिसेज नर्मदाबेन सेठानी हो जाती है । सेठ के साथ का उसका वैवाहिक जीवन किसी वैतरणी से कम नहीं । सेठ प्रौढ़ता के किनारों को छू रहे हैं और नर्मदाबेन से पहले कामवालियों , दातुनवालियों , रूपसी-वारांगनाओं के पीछे अनेक चेक §9§ काट चुके थे और अब सेठानी

के लिए उनके काम के खाते में "बैलेन्स " निल हो चुका था । परन्तु बिरादरी में अपनी प्रतिष्ठा और "पुरुष-अहं " को पोषने के लिए ही वे नर्मदाबेन की जिन्दगी को नरक बनाते हैं । नर्मदाबेन सेठानी की वासना-वल्गा को नहीं थाम सकने के कारण ही "घर की बात घर में रहे " इस थियरी से सेठ नगीनदास अपने बंगले में ही उसकी उचित-व्यवस्था ॥? ॥ कर देते हैं । सेठानी के लिए "खास॥ "खास" किस्म के पुजारी को रखा जाता है । सेठानी को मुरली सुनाने के लिए एक संगीत मास्टर को रखा जाता है । स्कूल और अनाथाश्रम खोले जाते हैं और उसके प्रिंसिपल तथा संचालक सेठानी की तबियत के रखे जाते हैं । कवि-गोष्ठियों के रंगीले शायर तथा "भूदानी- झोला लटकाए घूमने वाले श्रीमान खन्ना जैसे "मेल-प्रोस्टिट्यूटों " से भी नर्मदाबेन अपना काम चलाती है ।

इन सबसे नर्मदाबेन नर्मदाबेन सेठानी की शारीरिक-क्षुधा तो तृप्त हो जाती है, परन्तु सच्चे प्यार का एहसास दिलानेवाला कोई नहीं मिलता । एक-दो मिलते हैं । परन्तु भाग्य की वक्ररेखा साथ नहीं देती । एक को तो सेठ एक्सीडण्ट में मरवा डालते हैं । यहां किसीको प्रश्न हो सकता है कि जो सेठ सेठानी की वासना-पूर्ति के लिए सब आयोजन करता है, वह ऐसा क्यों करता है ? कारण यह है कि वहां रागात्मक सम्बन्ध होने के कारण, उसके साथ भागकर यदि विवाह कर ले तो सेठ की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल सकती है । दूसरा एक युवा कवि कृष्णकुमार मिलता है । सेठानी उसे भी दिलोजान से चाहने लगती है, परन्तु कृष्णकुमार गंगूबाई केलेवाली को चाहता है और वह ऐसा व्यक्ति है कि प्यार को संपत्ति के तराजू पर नहीं तौलता । वस्तुतः सच्चा प्यार तौला भी नहीं जाता । पूर्ववर्ती पृष्ठों पृष्ठों में हम सेठानी और गंगूबाई के वार्तालाप को लक्षित कर चुके हैं । वस्तुतः इस उपन्यास में जो सर्वोपरि है, वह है उसकी भाषा-शैली । कल्लन उस्ताद अपने शागिर्द पोपट को "सूरज का सातवां घोड़ा " वाली शैली में मुंबई की बात बताते हैं । औरत के दो रूपों की चर्चा करते हुए कल्लन उस्ताद नर्मदाबेन सेठानी और गंगूबाई की कथा सुनाते हैं

जिसमें और अवांतर कथाएं भी जुड़ती चली जाती हैं और मुंबई के तथाकथित अभिजात-वर्ग की कलई भी खुलती जाती है । भाषा की दृष्टि से एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है --

" न सात समंदर पार का , न राजा इन्दर के दरबार का , और न शहजादे शहरयार का न साढ़े तीन यार का -- यह किस्सा है , गांठिया-पापड़ी , उसल-पाव -मसाला डोसा , बटाटा-बड़ा , चाले-स्पेशल चाय और भेलपुरी के देश बम्बई का ।" 47

लेखक ने इस उपन्यास में कुछ नये उपमानों का प्रयोग भी किया है । यथा -- कवि - खटमल , योनि -- [illegible] सौन्दर्य और सौष्ठव का शतदल , वासना - खुजली , सेठानी नर्मदाबेन का प्यार -- शानदार लोन में खेली जाने वाली टेनिस , घड़ी - फावरल्यूबा की बेटी , प्यार -- महज एक इण्टरव्यू जिसमें परीक्षा कोई दे और पास कोई और हो आदि आदि । 48

इस प्रकार अपनी विशिष्ट भाषा-शैली के कारण यह उपन्यास मटियानीजी के उपन्यासों में विशेष महत्व रखता है ।

{5} कबूतरखाना :

"कबूतरखाना" उपन्यास भी मुंबई की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है । मुंबई का "भुलेश्वर " इलाका इसकी कथाभूमि के केन्द्र में है । मुंबई में घरेलू कामकाज -- बरतन , भांडा , झाड़ू-पोंचा , कपड़े धोना , खाना बनाना -- करने वाले नौकरों को "रामा" कहते हैं । प्रस्तुत उपन्यास की कथा ऐसे ही एक घाटी- रामा के मुंह से उसकी ही भाषा तथा शैली में कही गई है । उस घाटी का नाम है गणपत । गणपत भाऊ के माध्यम से दूसरे रामाओं की बात भी कही गई है । अगर गणपत भाऊ के शब्दों का प्रयोग करें तो " जो आंखों से देखा , जो कानों से सुना -- वोच बोलता ।" 49 पूरे उपन्यास में इस प्रकार की बम्बइया भाषा का प्रयोग हुआ है । लेखक के शब्दों में "कबूतरखाना" एक पंखनोचे कबूतर की अन्दरूनी तड़प और बाहरी गुटरगूं की एक

बोलती हुई तस्वीर है । बम्बई के सेठ-सेठानियों के कबूतरनुमा नौकर गणपत रामा की मुंहबोली दास्तान है । गणपत रामा के शब्दों में यह पूरा मुंबई एक कबूतरखाना है जिसमें गणपत , सखाराम , दत्तू , पटवर्धन , परदेशी , विट्ठल जैसे कबूतरनुमा घाटी सेठों के भांडी-बरतन मांजने के साथ -साथ वसुंधराबेन , यशोदादेवी , नीलाम्बरीदेवी , नर्मदाबेन जैसी सेठानियों पर भी हाथ साफ कर लेते हैं । ये वैभव -विलास में पली विपुलवासनावती (निम्फो) सेठानियां रामाओं से नौकरों से , खानसामों से , मालियों और सोकरों से अपनी यौन-खुजली को मिटाती हैं । इनसे उनका कोई आत्मिक संबंध नहीं होता । जब कोई नौकर या रामा उस स्थिति में नहीं रहता तो वे उसको दूध की मक्खी की तरह दूर कर देते हैं । इस प्रकार वे इन "कबूतरों " का यौन-शोषण करती हैं ।

ये सेठानियां अपने नौकरों से अपने देह की आग क्यों मिटाती हैं ? ये सेठ अपनी परीनुमा सेठानियों को छोड़कर पवनपुल और त्रिभुवन रोड के चक्कर क्यों काटते हैं ? क्यों कई सेठ बगीचों में "छोकरों से " एक रुपये वाली "स्पेशल मालिस " करवाते हैं ? क्यों सेठ लोग कच्ची उम्र के "लौंडों " के पीछे मारे-मारे फिरते हैं ? क्यों गंगाबाई , कमलाबाई , कुलसुम और सइदन जैसी बहनों को वेश्यागिरी करनी पड़ती है । गोलपीठा , कमाठीपुरा , पिलहाउस , पवनपुल और त्रिभुवन रोड किनके कारण आबाद है ? किसी करसनभाई सेठ को उसकी ही पत्नी नौकर की मदद से क्यों जलवा डालती है ? कल का नौकर दत्तू , दत्तात्रेय सेठ कैसे बन जाता है ? पान की हाटड़ियों के जरिये नागप्पा-शेषप्पा जैसे गुण्डों का राज कैसे चलता है ? कैसे यह मोहमयी xxxxxxxx फिल्मीस्तानी मायानगरी भारतीय संस्कृति की ऐसी-तैसी कर रही है ? आज़ादी के दश वर्षों में ही एक कंगाल मवाली-सा पोलिटिशियन चार-चार बिल्डिंगों का मालिक कैसे बन जाता है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर हमें गणपत भाऊ की जबानी सुनने को xxxxxxx मिलते हैं और इस प्रकार तथाकथित

अभिजात वर्ग की पोलपट्टी भी उघड़ती जाती है । उपन्यास की भाषा से जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास "मुर्दाघर" की स्मृति ताजा हो जाती है ।

"किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई", "कबूतरखाना" तथा "बोरीवली से बोरीबन्दर तक" जैसे उपन्यासों में जहां बम्बई के निम्न तबके का परिवेश है वहां बम्बइया हिन्दी प्रयुक्त हुई है । इसमें मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं के अनेक शब्दों की खिचड़ी मिलती है । यहां पर "था-थी" के लिए "होता-होती", "ही" के लिए "च", "पीछे" के लिए "पीछू", "मेरे-तुम्हारे" के लिए "हमेरे-तुमेरे", "चाहिए" के लिए "होना" जैसे शब्द बहुतायत से मिलते हैं ।

§6§ बोरीवली से बोरीबन्दर तक :

प्रस्तुत उपन्यास मुंबई की "अंधेरी आलम" की पृष्ठभूमि में लिखा गया उपन्यास है । शैलेश मटियानी जब मुंबई भाग आते हैं, उसके बाद उन्हें जो अनुभव होते हैं, उनका आधार भी यहां लिया गया है । उपन्यास में एक स्थान पर डुंगरीपाड़ा का युसुफदादा नूर से कहता है — "आदमी जिसम से नंगा हो तो उतना बुरा नहीं, उतना खतरनाक नहीं होता नूर ! जितना दिल से नंगा हो जाने पर होता है ।" 50 और प्रस्तुत उपन्यास में इन दोनों प्रकार के नंगों और उनके अंतर को लेखक ने बखूबी विश्लेषित किया है । इसमें मोहमयी मुंबई नगरी का पहली बार बेबाक और बेलौस चित्रण हुआ है । जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का "मुर्दाघर" और जयंत दळ्वी का "चक्र" तो बहुत बाद में प्रकाशित हुए । अतः उस समय इस उपन्यास पर भांति-भांति की प्रतिक्रियाएं आयीं । कइयों ने इसे बिलकुल सामान्य प्रकार का बाजारू उपन्यास बताया । राजकमल चौधरी ने तो "ज्ञानोदय" के माध्यम से मटियानीजी को सलाह तक दे डाली कि इसे किसी फिल्म निर्माता को दे देना चाहिए । "आजकल" ने जहां इसे भयंकर रूप से सेक्स-भावना से लिप्त बताया, वहां यह भी कहा कि "इसकी पकड़ बहुत अच्छी है । शैलेश मटियानी की शैली भी प्रशंसनीय है और यह एक

शक्तिशाली और अंकनीय रचना है।" [51] परन्तु अब लोग मटियानीजी पर नये सिरे से सोचने लगे हैं और उनके कृतित्व का सही मूल्यांकन अब हो रहा है। हाल ही में ममता कालिया ने प्रस्तुत उपन्यास को मटियानीजी की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाओं में गिनाया है। यथा —" रचनाकार के रूप में मटियानीजी अभी भी हमारे बीच हैं। उनकी रचनाओं में आम जीवन के मौलिक संघर्ष, स्वप्न और सरोकार सम्पूर्ण स्पन्दन पाते हैं। उनके उपन्यास "बोरीवली से बोरीबन्दर तक" की बम्बई आज की पाँच सितारा मुम्बई से एकदम अलग किस्म की नगरी है। इतनी पठनीय रचना लिखनेवाले इस रचनाकार के खाते में एक से एक अविस्मरणीय कहानियाँ हैं।" [52] शैलेश मटियानी पर गुजरात में सर्वप्रथम काम करने वाले प्रज्ञाचक्षु डा. सलीम वोरा ने इस उपन्यास के संदर्भ में कहा है —" कुछ भी हो यह उपन्यास प्रत्येक पाठक के बौद्धिक, वैचारिक और आत्मिक धरातल को झकझोर देनेवाला एक मर्मवेधी उपन्यास है। जो उसकी गहराई तक जाकर गोता लगा आया, उसका हृदय खिल उठा और वह सच्चे मन से शैलेश मटियानी का प्रशंसक बन गया और जिन्होंने किनारे पर रहकर ही मोती निकालने चाहे वे कोरे ■ रह गए। उन्हें इस उपन्यास में बुराई ही बुराई दिखी, अच्छाई कहीं नज़र नहीं आई।" [53]

वस्तुतः यह कहानी शैलेश की है, परन्तु उसे "वीरेन" का नाम दिया गया है। वीरेन का कुमाऊं के सुर्पे गांव से भागकर बम्बई आना, बम्बई में चेकर द्वारा पकड़ा जाना, चेकर का मानवतापूर्ण व्यवहार, वीरेन का बम्बई के किसी स्टेशन के प्लेटफार्म पर पड़ा रहना, वहाँ स्टेशन पर घुंगरापाड़ा के युसुफदादा द्वारा किसी उत्तरप्रदेशीय "भैया" का "सौदा" लेना (जेब काटने को उस समय की बम्बइया भाषा में "सौदा" लेना कहते थे), वीरेन द्वारा यह देखा जाना, दादा द्वारा वीरेन को चुप करा देना, दादा को वीरेन पर तरस आना, उसे अपनी प्रेमिका नूर के हाथ की चाय पिलाना, वीरेन की करुण-कहानी सुनना, उसे अपने यहाँ आश्रय देना, नूर की दर्दनाक कहानी, घुंगरापाड़ा और वहाँ के परिवेश का जीवन्त चित्रण, दादा का पकड़ा जाना, नूर का वास्तव

में नैनिताल की रेवा होना , वीरेन और रेवा में प्रेम होना , विट्ठल और स्वामी द्वारा नूर को भ्रष्ट करने के प्रयत्न , विट्ठल और स्वामी का हृदय-परिवर्तन , दादा द्वारा वीरेन और नूर को प्रेम करते हुए देख लेना दादा का वीरेन की छाती पर चढ़ बैठना और फिर अचानक छाती पर से उठकर कहीं चले जाना , वीरेन-रेवा का टिकट-चेकर के यहाँ आश्रय लेना , दादा का वहाँ पहुंचना और नूर से माफी माँगना जैसी घटनाओं के द्वारा बम्बई की अँधेरी आलम का यहाँ तादृश चित्रण हुआ है । यहाँ पर मटियानीजी ने एमिल जोला की भाँति ऐसे लोगों की मानवता को रेखांकित किया है जो गन्दी-घिनौनी बस्तियों में रहते हुए भी वक्त आने पर एक बालिश्त ऊँचे ही साबित होते हैं । एक स्थान पर नूर दादा के बारे में बताती है -- " वह बदमाश था , जुआरी-शराबी था , चोर था और खूंखार था -- पर उसके पहलू में जो दिल था वह बदमाश को होते हुए भी शरीफ , चोर को होते हुए भी ईमानदार और खूंखार भेड़िए का होते हुए भी कोमल था ।" [54]

दादा वीरेन की छाती से उठकर चला जाता है और फिर नूर की माफी माँगने आता है , उसका रहस्य यह था कि उसने कभी नूर को वादा किया था -- " दरअसल मैं बहुत बुरा हूं । तुम से उम्र में भी ज्यादा हूं , सूरत-शक्ल भी अच्छी नहीं , पर तुम पाओगी मेरा दिल बुरा नहीं है , जितना मैं बाहर दिखता हूं । तुम्हारी मासूमी का पाक साया मेरे गुनाहों को नेस्तनाबूद कर देगा , ऐसी उम्मीद है मुझे ... फिर अगर मेरी जिन्दगी में आने के बाद भी , तुम्हें कोई ज्यादा माकूल आदमी मिल सके , तो मैं रोकूंगा नहीं तुम्हें । तुम्हें हक होगा , जिसे तुम्हारा दिल चाहे उसकी जिन्दगी आबाद करो । वहाँ तुम मुहब्बत के जरिए जाओ , महज रोटी-कपड़ा ढूंढने या सहारा पाने नहीं ।" [55] उपन्यास की भाषा बम्बइया हिन्दी है जिसका जिक्र पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं ।

§7§ छोटे - छोटे पक्षी :

छोटे-छोटे पक्षी एक सामान्य मनुष्य की संघर्ष-गाथा है ।

यह उपन्यास एक प्रकार की अनुभव-यात्रा बन जाता है , उन तमाम-तमाम लोगों के लिए जो भागकर प्रेम-विवाह करते हैं । सामाजिक रूढ़ियों के चलते उसके चक्रव्यूह को भेदकर अपनी एक अलग दुनिया , अपनी एक अलग पहचान बनाने का स्वप्न कई-कई प्रेमी संजोते हैं । हम देखते हैं कि इस प्रकार कई लोग प्रेम-विवाह करने के लिए भागते हैं , परन्तु कुछ दिनों बाद संघर्ष नहीं कर पाने के कारण "लौट के बुद्धू घर को आये वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं । प्रेम-विवाह कई बार असफल रहते हैं , क्योंकि विवाह-पूर्व वे एक प्रकार के काल्पनिक यूटोपिया में रहते हैं और विवाह के बाद जब उनके सामने आर्थिक , सामाजिक , पारिवारिक कठिनाइयों की क्रूर वास्तविकता मुंह बाए खड़ी हो जाती हैं , तब उनके सामने वे घुटने टेक देते हैं ।

इस उपन्यास के सतीश और दीक्षा भी इलाहाबाद से दिल्ली भाग आते हैं और उनका प्रेम-विवाह भी असफल रहता यदि दीक्षा उसे समझदारी और सावधानी तथा मजबूती से संभाल न लेती । प्रेम-विवाह की सफलता के लिए वह संतुलन चाहिए जो "छोटे छोटे पक्षियों " में होता है । सतीश में प्रेम का आवेग और आवेश है , परन्तु वह संतुलन नहीं था । किन्तु उनके सद्भाग्य से दीक्षा में यह संतुलन हमें मिलता है । इलाहाबाद से भागते समय सतीश को अपने सहाध्यायी दिग्विजयसिंह पर काफी भरोसा था । पढ़ाई के दिनों में वह आग उगलने वाली भाषा में बात करता था और कैम्पस में उसे "फायर-ईटर " समझा जाता था , किन्तु दिल्ली में आकर वह "फायर" बुझ चुका था । "फ्री-लान्सिंग " पत्रकारिता करने वाले मुल्कराज त्यागी से सतीश को ज्यादा आशा नहीं थी , लेकिन उनसे तथा उनकी पत्नी संतोषीदेवी से ही उन्हें ठोस आधार मिलता है । इस प्रकार सतीश-दीक्षा की प्रेम-यात्रा के जरिये लेखक महानगर दिल्ली की आपाधापी , संघर्ष , मध्यवर्गीय प्रदर्शन , बुद्धिजीवियों की हिपोक्रसी , एडवान्स कहे जाने के मोह में पतनोन्मुखी जीवन-चिंतन , औरतबाजी , शराबनोशी , ड्रग-एडिक्शन , छल-कपट , छिना-झपटी , महंगाई , दूसरों की लाचारियों से लाभ उठाने की गीध-प्रवृत्ति और आत्म-प्रदर्शन

के दो पाटों के बीच पिसता मध्यवर्ग , उसकी चीखों-पुकार , सिगारेटनुमा मकानों वाली बस्तियाँ , बेरोजगारी की तपन और कुढ़न , मुसीबतों की क्षारता का एक महासागर आदि को उकेरने में बाकायदा सफल रहे हैं । इस खारे समुद्र में कुछ सच्चे मोती भी हैं — संतोषीदेवी , त्यागीजी , मीना चावला , सतीश और दीक्षा । वस्तुतः यथार्थवादी लेखक का लक्ष्य घोर तमिस्रो में भी ऐसे ज्योतिर्बिन्दुओं की तलाश का रहता है ।

उपन्यास की भाषा उसकी कथावस्तु के अनुरूप है । कुछ नये उपमान बरबस पाठक का ध्यान आकर्षित करते हैं । यथा — औरत — कोहरा ; घरवाली — अण्डा देनेवाली मुर्गी ; अंधेरे का गहराना — नालों के पानी से नदी का बाढ़ में होते जाना ; रेल का सफर — सर्दियों में कुत्तों का एक दूसरे की टांगों में घुसे रहना ; रेलगाड़ी — भूकम्प के वक्त बच्चे को लेकर भागती औरत ; चश्मेवाला पत्रकार — छः आंखोंवाला जीव ; प्रेम— गंधर्व-कर्म ; अनिश्चित व्यक्तित्व — मुंडा साप आदि-आदि । [56]

§8§ आकाश कितना अनंत है :

"आकाश कितना अनंत है" अनंत संभावनाओं वाला उपन्यास है । इस उपन्यास के संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं — " "आकाश कितना अनंत है" मैंने पढ़ लिया है । इसकी वैचारिक मौलिकता ने सचमुच बहुत प्रभावित किया है । जिस खूबसूरती और बेबाकी से सारी स्थितियों का विश्लेषण किया गया है , वह हिन्दी में दुर्लभ है । जिस धैर्य और संतुलन के साथ इसके कथानक का विकास किया गया है , उससे स्थान-स्थान पर मैं ईर्ष्यालु हो उठा हूं । शारदा पंडित और गीता पाल के चरित्र बेहद बारीकी के साथ उकेरे गए हैं । उपन्यास ने मुझे केवल एक दिन में समाप्त करने को विवश किया है । यह उसकी पठनीयता ही सिद्ध करती है । यह सारा उपन्यास मुझे अद्भुत आत्मान्वेषण की यात्राओं में ले गया । शेखर की व्यक्तिगत ट्रेजडी , परिस्थितियाँ जिस तरह उठकर सजग संघर्ष और मानसिक विकृतियों से लड़ने के संकल्प तक पहुंचती हैं , वह किसी भी द्वन्द्वग्रस्त मन के लिए एक बहुत बड़ा आश्वासन ही है ।" [57]

जैसे जैसे हम आकाश को देखते जाते हैं उसकी अनंत संभावनाएं हमारे सामने प्रकट होने लगती हैं । इस उपन्यास के भी मुख्य पात्र — राजशेखर , कामरेड सूरज , मिस गीता पाल — अनंत संभावनाओं से भरे हुए हैं । "हौलदार" का डुंगरसिंह एक अचल चरित्र है । बना हुआ चरित्र । किन्तु इस उपन्यास के प्रायः अधिकांश पात्र बिकमिंग-प्रोसेस में हैं । जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है उनके अनंत रहस्य खुलते चले जाते हैं । प्रारंभ का छिछोरबुध , आवारा , स्कैण्डिलबाज़ राजशेखर क्रमशः अपने रचनात्मक पहलुओं द्वारा एक परिपक्व सिन्सीयारिटी को प्राप्त करता है । उसी तरह कामरेड सूरज एक युवक , बहसबाज , लेनिन मार्क्स का झुटकेला-सा , सैद्धान्तिक बातों के बड़े पकानेवाला व्यक्ति प्रारंभ में लगता है ; परन्तु जैसे-जैसे इस पात्र के सामने के पर्दे हटते जाते हैं उसकी कर्मठता , सिद्धान्तप्रियता , आचरण की शुद्धता और प्रामाणिकता से हम रूबरू होने लगते हैं ।

सूरज कामरेड आश्रम की विधवा-भक्तिन से विवाह करता है और अन्त में सत्य के खातिर किसी प्रकार का समझौता नहीं करके जेल चला जाता है । जेलर उसके बारे में कहता है — "यह आदमी तो हीरा है साहब । यह सियासी लोग बड़े हरामी किस्म की चीज़ होते हैं । एक ऐसे आदमी पर एण्टी-नेशनल और चीनी तरफदार होने का इल्जाम लगवा दिया , जिस पर हमें नाज़ करना चाहिए ।" [58] सूरज कामरेड को जेल से रिहा करवाने के लिए माफीनामा का मुसद्दा तैयार करवाया जाता है , सिर्फ "फार्मालिटी ही बाकी रह गयी है , लेकिन वह बाकी ही रह जाती है । इस संदर्भ में जेलर महोदय कहते हैं — "खुद मैंने बहुत कहा कि वर्मासाहब , यह तो सिर्फ फार्मालिटी है , और न तो इसे कहीं साया होना है और न गजट में जाना है । .... मगर उनका जवाब यह रहा कि "और कहीं न सही , जेलर साहब मेरे दिल और दिमाग में , यहां तक कि खून में तो इसे आ ही जाना है । मैं गुनहगार होता तो माफीनामा भरता और चल पड़ता , मगर अब मुझे सिर्फ बिना शर्त रिहा होना है । रिटर्न की तो बात ही छोड़िये , वो जबानी तौर पर भी माफी मांगने को तैयार नहीं । ... ही इज़ फुल्ली ए

डीटरमिण्ड परसन ।" [59] और यही बात मिस पाल पर भी लागू होती है । केवल मिसेज मैठाणी का चरित्र ऐसा है जिसे हम "अचल" चरित्र कह सकते है ।

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा का एक दूसरा स्तर है । यहाँ हमें इस बात का पता चलता है कि मटियानीजी का हिन्दी भाषा पर कितना प्रभुत्व है । एतदर्थ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -- " तुम्हें याद होगा , शेखर ! अभी परसों जब तुम्हें थोड़ी देर के लिए धूप में ले आया था , तो तुमने आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की ओर संकेत करते हुए मुझ से कहा था -- " कामरेड ददा , जरा देखिए तो सही , यह आकाश कितना-कितना अनंत है , और इन पक्षियों के पंख कितनेxछोटेxहैंx छोटे-छोटे हैं ! " .... साफ है तुम्हारा इशारा हम लोगों के संघर्ष की ओर ही रहा होगा कि खुद के "मिशन" की तुलना में हम लोगों की औकात कितनी छोटी है ... इस सिलसिले में तुमसे मुझे सिर्फ एक बात -- लेकिन बहुत जरूरी तौर पर -- ये कहनी है कि ये ठीक है कि आसमान का कोई अन्त नहीं , वह सचमुच अनंत है । मगर प्यारे , आदमी का अपनी इन्सानियत को अपने हाथों और अपनी आँखों के सामने जी सकने का संघर्ष भी उससे कम अनंत हर्गिज नहीं है । संसार की सारी नियामतों से मूल्यवान और खूबसूरत यह संघर्ष न हमसे-तुमसे शुरू हुआ है और न हमारे-तुम्हारे साथ खत्म होगा ।" [60]

भाषा का यह स्तर उनके "चन्द औरतों का शहर" , "छोटे-छोटे पक्षी" , "बर्फ गिर चुकने के बाद , "कोहरा" जैसे उपन्यासों में भी दृष्टिगोचर होता है ।

§9§ रामकली :

निरंतर सृजकता में रहने वाला लेखक भी बराबर उन बच्चों की मानसिकता में रहता है जो घरौंदों को बनाते समय सोचते हैं -- " उंह , ना , हो , यही ठीक रहेगा , ना थोड़ा ऐसा , थोड़ा-सा

तिरछा , ऊंह ऐसा नहीं , हां थोड़ा , हां अब ठीक है । " बच्चे की यह प्रवृत्ति होती है , ईश्वर की भी और सर्जक की भी । तभी तो वह वह अपने सर्जन के साथ निरंतर प्रयोग करता रहता है । इसके ये प्रयोग ही इस बात के सबूत हैं कि अपनी रचनाधर्मिता को वह कितना समर्पित है , कि अपना यह खेल वह किस खिलण्डरेपन के साथ खेल रहा है । और तभी वह बने हुए को बारबार बनाता है । और तभी कोई "जलतरंग" , "मायासरोवर" बन जाता है , कोई "सर्पगन्धा" , "नाग-वल्लरी " तो कोई "पोस्टमैन " या "रमौती" , "चिट्ठीरसैन " तो कोई "शरण्य की ओर " जैसी कहानी का रूपांतर होता है "रामकली" जैसे उपन्यास में । " कहां तक जाता है किसी रामकली — जैसी औरत का स्त्रीत्व और कहां तक बसंतलाल की संवेदना का दायरा , इन्हीं दो छोरों पर टिका है , उपन्यास का पूरा वितान । सामान्य से सामान्य आदमी के भीतर भी अपनी तरह का अपूर्व संसार है , किन्तु दिखता है तभी , जब कोई झांके और खुद का यह संसार भी कहां दिखता है , बिना भीतर झांके । " 6।

रामकली एक सुंदर , अबोध , मुग्ध किशोरी है । आंखों में सपने तैर रहे हैं। पर ब्याही जाती है बसंता जैसे एक अधेड़ व्यक्ति से । प्रेमचन्द की निर्मला की भांति कारण यहां भी गरीबी का है । वह मध्यवर्गीय गरीबी थी , यहां दारुण निम्नवर्गीय गरीबी है । मरता हुआ रामकली का बाप उसे बसंता के हवाले कर जाता है । बसंता पिता और पति की भूमिका बखूबी निभाता है । रामकली की स्त्रीत्व का पराग जब पगुराने लगता है , उसकी विपुल सौन्दर्य-राशि का वारुणी जब उसके मन को मोहने लगता है और इसकी प्रतीति जब उसे होने लगती है कि उसका भुवनमोहन सौन्दर्य बसंता जैसे व्यक्ति के लिए नहीं , किन्तु तब तक वह बसंता के दो बच्चों की मां बन चुकी थी । परन्तु उक्त एहसास के कारण वह कमला पहलवान और ठेकेदार अमोलक चन्द तक पहुंचती है । अभुक्त काम-वासना उसे पहलवान के पास पहुंचाती है तो वैभव की प्यास उसे ठेकेदार तक ले जाती है । "प्योरिटियन" लोगों की दृष्टि में

"कुलटा" या "वेश्या" समझी जानेवाली इस स्त्री के "सतीत्व" को मटियानी जैसे कोई सर्जक ही देख सकते हैं । मटियानीजी यह देख पाये हैं कि अनेक पुरुषों द्वारा संभोगित वेश्या अपनी व्यक्तिगत निष्ठाओं में कमल-सी निःस्पृह रहते हुए उस स्त्री से अधिक पवित्र होती है जो एक पुरुष द्वारा भोगी जाने पर भी अपनी मानसिकता में अनेक पुरुषों द्वारा व्यभिचरित होती है । रामकली के जीवन में अलग-अलग समय पर अलग-अलग पुरुष आते हैं, पर एक समय में उसके जीवन में किसी एक के प्रति ही निष्ठा देखी जाती है । जब वह औरों के साथ थी तब भी वह अपने बच्चों को मिलने बसंता के पास आती थी और कभी-कभी तो रात भी रुक जाती थी, पर वह अपने ब्याहता पति को अपने पास तक नहीं फटकने देती थी । उसके स्त्रीत्व का पुण्य-प्रकोप तब प्रकट होता है जब अमोलक सेठ उसे महज़ एक बाजारू औरत समझते हुए अपने दो व्यावसायिक मित्रों को अपने साथ ले आता है रामकली के साथ मजा लूटाने के उद्देश्य से, तब वह साफ कह देती है — "हरामी, बिना अपनी मरजी के तो मैंने अपने ब्याहते को भी नहीं छूने दिया, तू ससुरा कौन होता है साले ।"[62]

और तभी बसंता के सहिष्णु व करुणापूर्ण प्रेम की व्यापकता का अनुभव उसे होने लगता है । बाहर से कुरूप और बदसूरत दिखनेवाला यह व्यक्ति भीतर से कितना सुंदर है । सचमुच, प्रेम ही व्यक्ति की सुंदरता को व्याख्यायित कर सकता है । इस अहसास के उभरने पर रामकली को अपनी आवारा गाय -सी स्थिति पर कोफ्त होने लगती है और बसंता उसे पा जाता है हमेशा-हमेशा के लिए ।

किन्तु मटियानीजी जो यहाँ दिखाना चाहते हैं वह यह कि रामकली जितने विपुल-सौन्दर्य की मालकिन है, बसंता उससे अधिक महान चरित्र वाला एक सामान्य व्यक्ति है । नारी-शोषण और प्रताड़ना में, छाती और मूंछ के बालों में तथा केवल अपने बाहुबल में ही अपना पौरुष देखनेवालों को बसंता एक कापुरुष, नामर्द लग सकता है, बल्कि अस्वाभाविक और अप्राकृतिक भी ; परन्तु जिन्दगी की हकीकतों से वास्ता रखने वाले लोग जानते हैं कि कई बार हकीकतें कल्पना से भी

अधिक रोमांचक होती है । ऐसे लोग हर कहीं नहीं मिलते , क्योंकि यहाँ तो अपहर्ता स्त्री की भी अग्नि-परीक्षा ली जाती है । धोबी की बात पर सीता को त्यागने वाले और किसीकी परवाह न करते हुए पत्नी को बेटी की भाँति विदा कर और फिर उसे पुनः अपना लेना , पत्नी की इच्छा पर उसे दूसरों के पास खुशी-खुशी भेज देना , उसके बच्चों को खूब प्यार व जतन से रखना और उनके बेहतर भविष्य के लिए बैंक में पैसे जमा कराना कराने वाले बसंता में कोई तुलना नहीं हो सकती । महान को महान बताना तो बहुत आसान-सा काम है , परन्तु सामान्यता में महानता का अन्वेषण कला के उच्च-शिखरों को इंगित करता है ।

उपन्यास की भाषा यथार्थतः उसके वस्तु के अनुरूप है । यथा— "तू और हम कौन हैं , मुरे की भाभी ! सारा खेल खेलने वाला तो वह ऊपर वाला है । इन्सान को तो अपने वक्त और रास्ते को देखते हुए , जहां तक हो सके , अपनी समझ से सही ही चलते जाने की कोशिश करनी होती है । तुनक के चलने की तो न अब तेरी उमर रही है न मेरी । अब यही देख ले कि जहां तक मेरा सवाल है , रामकली को तो तू जानती है , बहुत पहले ही घर से निकल पड़ी थी — लेकिन तुमसे बोलना कब शुरू किया मैंने ? अभी सिर्फ चन्द महीने ही पहले तो ? जब रतना और श्यामा को इस्कूल में भरती करवाने की खातिर नसबंदी करवा लेनी पड़ी ? आती-जाती तो रामकली के जमाने से ही रही थी तू । ... मगर मेरे मन में यही रहा कि कहीं कुछ गलत-सलत हो गया , तो मेरा क्या ? मर्द की जात में गिनकर छोड़ दिया जाऊंगा — तेरा जिन्दगी-भर का बोझ हो जाता । .... और मैं तो अब भी तुझसे यही कहूंगा कि घर का दरवाजा तो तेरा देखा ही है । मेरे बर्ताव में किसी तरह की कमनियती देखेगी , तब कहना कि बसंता , तू सही इन्सान नहीं । ... आखिर रामकली जो जंगल गई गैया-सी लौट आयी है तो कुछ मेरे गुन देखकर ही न ? तेरा गोपाल और दो-तीन साल बड़ा हो जाए , तो मेरे साथ लगा देना — राय साहब के प्रेस में लगवा दूंगा । अक्षर-ज्ञान तो उसे है ही , कम्पोजिंग सीख लेगा ।" 63

§10§ गोपुली गफूरन :

"गोपुली गफूरन " एक स्त्री की यातना-यात्रा है, जिसे गोपुली शिल्पकारिन से गोपुली गफूरन बनना पड़ता है । वह अपनी मरजी या खुशी से गफूरन नहीं होती है । अन्यत्र एक स्थान पर मटियानीजी धर्म-परिवर्तन के संदर्भ में लिखते है : " जो व्यक्ति एक बार हिन्दू संस्कारों में पल चुका है, किसी भी अन्य धर्म को अपनी अंतरात्मा से स्वीकार पाना उसके लिए शायद सम्भव नहीं । हिन्दू से मुसलमान या ईसाई होने xxxx वाले वही लोग सहजता से दूसरे धर्म में रह पाये, जो सिर्फ जाति से हिन्दू थे, संस्कारों से नहीं ।"[64] मटियानीजी के पिता भी ईसाई हो गये थे और उसकी वेदना में वे आखिर तक रहे थे और अंतिम समय में उन्होंने अपने अग्निसंस्कार की इच्छा को प्रकट किया था जो पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरूपित किया जा चुका है ।

गोपुली का गफूरन मजबूरन होना पड़ा था । उसका पति रतन-राम फौज में भर्ती हुआ था । उसके बाद कुछ समय तो गोपुली xxxxxx xxxxxxxxxx का अमन-चमन में जाता है, परन्तु बाद में रतनराम के लापता होने के समाचार आते हैं । यहां से गोपुली के दुर्दिनों की शुरू-आत होती है । x विक्रमसिंह उसे अपने प्रेम-जाल में फंसाता है और उसे "दो जीवी" करके छोड़ देता है । गोपुली आत्महत्या कर लेती हैx, परन्तु "मां" होने की मजबूरी उसे वैसा नहीं करने देती । और वह गोपुली से गफूरन बन जाती है, क्योंकि कोई माई का लाल हिन्दू उस असहाय नारी को थामने नहीं आता । इस स्थिति में सद्दूमियां ही उसकी मदद करते हैं और गोपुली उससे "निकाह" पढ़ लेती है ।

वस्तुतः रतनराम ने फौज से कबका डिस्चार्ज ले लिया था परन्तु वह किसी स्त्री के चक्कर में पड़कर घर नहीं आता । वह स्त्री उसे पूरी तरह से निचोड़ लेती है और फिर धक्का मारकर बाहर कर देती है । रतनराम किसी तरह घर पहुंचता है और उसे गोपुली का वृतान्त ज्ञात होता है । वह मारे क्रोध के पागल हो जाता है और अपने घर को तीन-सौ चार सौ रूपयों में गिरवी रखकर सद्दूमियां पर

मुकदमा दायर कर देता है, जिसका फैसला सद्दूमियाँ और गोपुली के पक्ष में जाता है। इस संदर्भ में उपन्यास का एक पात्र मथुरा पंडित उचित ही कहता है : " गोपुली अगर मुसलमानी हो गई है, तो ये कसूर उस बेगुनाह औरत का नहीं है — हम पत्थर-दिल और अपनी ही बेटियों को आसरा देने में नाकाम हिन्दुओं का है। इस बेगुनाह और जद्दोजहद की जिन्दगी को भी प्यार से बसर कर देने वाली ममता से लबरेज औरत पर झूठा दावा कायम करके रतनराम ने हम हिन्दुओं की कमनियती का सबूत दिया है। ... ये तो इस लड़की की खुशकिस्मती है कि सआदत-हुसैन जैसा नेक आदमी इसे मिल गया, नहीं तो हम पहाड़ियों की गरीबी और बेरहमी की मारी जाने कितनी बेटियाँ कहाँ-कहाँ मारी-मारी फिर रही हैं।" 65

कोर्ट के फैसले के बाद गोपुली रतनराम को कोर्ट से बाहर मिलती है और कहती है — " अभी घड़ी-दो घड़ी के बाद, दुकान पर पहुँच जाना। मैं किशन को उसके कपड़े-लत्तों के साथ भेजती हूं। बच्चे और फूल का कोई दोस नहीं है। देखो, आदमी को अपनी पितरघाट कभी नहीं छोड़नी चाहिए। अभी तुम कौन इतने बूढ़े हो गए हो। देबुली दीदी से बातचीत करके, कहीं से कोई दो रोटियाँ पकाने वाली ले आओ। इस बच्चे को पालो और अपना वंश चलाओ। मैं किशन को अपने साथ ही रोक लेती, मगर बच्चे को अपने वंश में रहना चाहिए — औरत जात का क्या है, पानी है, जहाँ बह गई। इसे कस्बे के स्कूल में पढ़ने भेजना जरूर। मैं दस-बीस रूपये इसके खर्च को भिजवाती रहूंगी। देखो, अपनी जिन्दगी को सुधारो। हिम्मत न हारो। कानों से सुनूंगी कि तुम बस गए, तो यही मेरे हिस्से का सुख होगा — बाकी आज से तुम्हारा-मेरा सम्बन्ध आखिरी तौर पर खत्म हो गया।" 66

और गोपुली यह सब कर पाई है, कह पाई है, उसमें भी सद्दूमियाँ की उदारता को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। वह किशन के कपड़ों की पोटली के साथ सात सौ रूपये भी भेजती है और सद्दूमियाँ से कहती है : " वह दुकान में आएगा। ये रूपये उसे दे

देना । कह देना कि घर गिरवी से छुड़ा ले और दूसरी शादी कर ले । किशन आखिर- आखिर उसकी औलाद है , इसे भी उसे सौंप दो , तभी मेरी मुक्ति पूरी होगी ।" 67 इसके उत्तर में सद्दूमियाँ कहते हैं — " कहो तो , किशना की अम्मा , गाय को भी रतनराम को सौंप दिया जाए । किशन के दूध का भी सहारा हो जाएगा । हमारा क्या है , हम बाजार से ले लेंगे । हम बिसातियों के घर में गाय कहाँ पली आज तक ।" 68तब गोपुली कहती है —" नहीं , कजली यहीं रहेगी , शमीम के अब्बा ! इस घर में अबमुझे गोपुली के रूप में पहचानने वाली सिर्फ यही होगी । और फिर शमीम को बाजार का पानी मिला भैंस का दूध पिलाऊंगी क्या मैं ? मुझे अब उतना दूध होता नहीं । ... रतनराम से कहना — बीस-पच्चीस रूपयों में कोई गाय खरीद ले । वहाँ घास-चारे की तो कोई कमी तो है नहीं । अच्छा सलाम .... " 69 और इसके साथ ही लेखक की अंतिम टिप्पणी —" न सद्दूमियाँ समझ पाए कि उसने किसको सलाम कहा है और न वह खुद समझ पाई कि उसके मुंह से एकाएक "सलाम" क्यों निकल पड़ा है ।" 70

जहाँ तक उपन्यास की भाषा का सवाल है , उपर्युक्त विवेचन में जो उदाहरण दिए हैं उससे उसके भाषिक-स्तर का अंदाज़ भी निकल ही आता है ।

<u>§11§ बर्फ गिर चुकने के बाद :</u>

लेखक भी जीवन की प्रयोगशाला का एक वैज्ञानिक होता है । जिस प्रकार वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में प्रयोग करता रहता है , वैसे लेखक भी अपनी रचना-प्रयोगशाला में नित्य-नवीन प्रयोग करता रहता है । प्रस्तुत उपन्यास इसी प्रयोगधर्मिता का परिणाम है । उपन्यास की भूमिका "आरंभ" में लेखक कहते हैं — " "बर्फ गिर चुकने के बाद " मेरे अब तक के लेखन में किंचित भिन्न — और संभवतः इसी कारण से — कठिन किस्म की कोशिश है । स्पष्ट है कि रचना कर सकने की कोशिश

और कठिनता , लेखक तक ही सीमित न रहकर , प्रकाशित कृति का रूप धारण कर ले , तो वह प्रत्येक के लिए नई होगी । न सिर्फ भाषा और सम्प्रेषण , बल्कि कथ्य और संवेदन की दृष्टि से भी । लिख सकने के अभ्यास का किसी रचना में उपस्थित रहना , इसलिए उसकी विफलता का प्रमाण बन जाता है ।"[71]

उत्कृष्ट साहित्यिक कोटि के उपन्यासकारों की एक और विशेषता उनकी चेतनागत-व्यापकता "मैनी फोल्डनेस" है । यह व्यापकता जीवन-स्तरों की हो सकती है और साथ ही कलागत स्तरों की भी । ऐसे लेखक एक ही साथ विभिन्न पाठकों को अलग-अलग तरीकों से प्रभावित करते हैं । अज्ञेयजी के शब्दों में इसमें उपन्यासकार " एक साथ ही कलाभिव्यंजना के कई स्तरों पर विचरण कर सकता है । जन-साधारण के लिए (अमुक घटित हुआ या हो रहा है) , दूसरे लेखकों के लिए (अमुक विषय-वस्तु को मैंने ऐसे लिया है , आप क्या करते या शेक्सपीयर या तुर्गनेव क्या करता ?) या स्वयं के लिए (हाँ , यह तो दृष्टिकोण हुआ , समस्या का हल क्या है ?) । एक साथ कई स्तरों पर अभिव्यक्ति आधुनिक उपन्यास का एक लक्षण है । आंद्रे जीद का "जालसाज़ " इस प्रकार के उपन्यास का बहुत बड़ा रोचक उदाहरण है । रूप-विधान की दृष्टि से वह इधर की महत्त्वपूर्ण कृतियों में स्थान रखता है ।"[72]

शैलेश मटियानीजी में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । वह अपनी प्रत्येक कृति में चेतना की एक व्यापकता को लेकर आते हैं । अतः यह उपन्यास विशिष्ट अभिरूचि वाले पाठकों के लिए ही पठनीय हो सकता है । केवल कथावस्तु को ढूंढने वाले पाठक तो " ढूंढते ही रह जायेंगे " वाली स्थिति में नहीं रहेंगे क्योंकि ढूंढने के लिए भी पढ़ना पड़े और ऐसे पाठक उसके दश पृष्ठ भी शायद ही पढ़ सकें । यदि कोटि निर्धारण करना ही पड़े तो उसे "एण्टी नाविल " या "एबसर्ड नाविल " की कोटि में रख सकते हैं । उपन्यास में कविता का आनंद लेने की क्षमता या रूचि रखने वाले पाठकों को यह उपन्यास कविता का-सा

आनंद दे सकता है । इस उपन्यास की कुल जमा कथा इतनी है कि रवि नामक एक युवक फिल्म पटकथा-गीत-लेखक है अपनी एक फिल्म की शूटिंग के दौरान एक पर्वतीय प्रदेश पर जाता है जहाँ का वह मूल-निवासी है । वहाँ अचानक रवि की भेंट अपनी पूर्व-प्रेमिका से हो जाती है । वह उससे पूछती है -- " क्यों , पहचान नहीं पा रहे हो ? " साथ में उसका छोटा बच्चा भी है । बस , इसी एक वाक्य की कितनी गहरी तथा अलग-अलग प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं , उसकी संभावनाओं को तलाशने का एक कलात्मक प्रयत्न-कोशिश है यह उपन्यास । स्त्री-वंचना से गुजरने का अनुभव क्या हो सकता है उसकी प्रतीति यहाँ होती है । इसके साथ ही फिल्म के हीरो " किरणकुमार (, हीरोइन (रूपरेखा (तथा डायरेक्टर (नरेन्द्र खोसला (के अश्लील व्यवहार तथा सोच को उजागर करते हुए मोहमयी फिल्मी दुनिया की अन्दरूनी बिभत्सताओं तथा विद्रूपताओं को भी लेखक ने उद्घाटित किया है । इसके पूर्व उग्रजी के "फागुन के दिन चार " तथा डा. राही मासूम रज़ा के "दिल एक सादा कागज़ " जैसे उपन्यासों में हम उसके इस बिभत्स रूप को देख चुके हैं ।

इस उपन्यास के जरिये हम यह भी महसूस करते हैं कि जरूरी नहीं कि व्यक्ति केवल भाषाई-दृष्टि से ही वल्गर हो , एक भी अश्लील शब्द का इस्तेमाल किए बिना भी कोई व्यक्ति महा-वल्गर हो सकता है । रवि किरनकुमार को यह समझाने की कोशिश करता है कि जब किसीकी प्रेमिका की मृत्यु हो जाती है , तब वह सिर्फ एक पंख टूटे पाखी की तरह अपने ही भीतर के आकाश से नीचे गिरता है , उसकी असहायता को , चरम यातना को , आलंकारिक शब्दों से भरना नितान्त हास्यास्पद हो सकता है ; परन्तु हीरो किरनकुमार तो उस समय बगल में बैठी तिनका ठूंगती हीरोइन के स्तनों×को अपनी बायीं हथेली से दबोच लेता है और रवि को कहता है कि मिस्टर कविराज जरा यहाँ पर हाथ रखकर देखिए , मौत का जो "मेनिया" आपके दिमाग पर हावी हो गया है , वह काफूर हो जाएगा।[73] प्रेमिका

की मृत्यु की दारुणता किरनकुमार नहीं समझ सकता क्योंकि वह जानता है कि आगे चलकर फिर हीरोइन जीवित हो जाएगी और जेबकतरी करxx के जुर्म में उसकी अवैध संतान अदालत में अपनxxx अपने न्यायाधीश बाप से इन्सानियत पर बहस करेगी —" मीलोर्ड , मैं समाज की ऐसी सभ्यता पर कोलतार पोत देना चाहता हूं , जो हकदार को कठघरे में और गुनहगार को इन्साफ की बददी पर बिठाती है ..."74 इस प्रकार उपन्यास फिल्मी-फार्मूला तथा लटकों पर भी चिकौटी काटता है । वस्तुतः जीना एक व्यापार की तरह नहीं , यात्रा की तरह होना चाहिए ; और वहां फिर ऐसा नहीं होता कि मिस कापड़िया हो , या मिस तापड़िया क्या फर्क पड़ता है । कु फर्क पड़ता है , और बहुत पड़ता है , यदि जीवन एक यात्रा हो । किन्तु कुछ लोग अपनी बेहूदगियों में भी जानवरों की तरह निश्चिंत होते हैं , कदाचित ये बेहूदगियां ही उनके लिए कला होती है । डायरेक्टर नरेन्द्र खोसला इन बेहूदगियों को कला मानता है और लेखक ने यह बताया कि डायरेक्टर खोसला उस समय के सफलतम डायरेक्टरों में माना जाता है । यह भी इस इण्डस्ट्री की सबसे बड़ी बेहूदगी है ।

भाषिक-संरचना की दृष्टि से भी यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपन्यास प्रमाणित होता है । एक-दो उदाहरणों के द्वारा इसे स्पष्ट किया जाएगा । उपन्यास में एक स्थान पर लेखक अष्ट-ककारों (9) की बात करता है — " हालांकि फिर यहीं पर मैं दोहराना चाहूंगा कि भाषा किसीको भी बख्शती नहीं है और अपनी कामुकता , कुटिलता , क्रूरता , कायरता , कंचनता , काषायता या करुणा अथवा कला में से जितनी छूट या मुक्ति अपने लिए आप लेते हैं , उतनी ही वह दूसरों को भी देती है । उदाहरण के तौर पर " लक्ष्मीसहायजी" की छूट लेते ही मैं खुद "सरस्वतीसहाय" बन गया हूं । " 75

एक और उदाहरण देखिए —" मैंने कहा था , आप लोग विश्वास करें , प्रेम एक शब्द है और इसीलिए वह सिर्फ शरीर में नहीं है , । शब्द कभी भी सिर्फ शरीर में नहीं रहता है । मैं बाजीगर नहीं हूं लेकिन , फिर

भी , यह बताने की कोशिश करूंगा और आप स्वयं देखेंगे कि शब्दों को हवा में कबूतरों की तरह उड़ाने का खब्त ही हमें उस भाषा की तरफ ले जाता है , जिसे हम अपने अस्तित्व में हवा की तरह बहते हुए पाना चाहते हैं । गर्मी के दिनों में मैदानी इलाके में जब कभी आप घर के भीतर की उमस और घुटन से बचने के लिए बाहर आम या नीम के पेड़ों के नीचे चारपाइयां डाल लेते हैं और रात के सन्नाटे में आप देखते हैं कि हवा नहीं चल रही है । नीम और आम के पेड़ों की ओर आंख उठाने पर पत्तियां मरी हुई मछलियों की तरह निस्पंद दिखती हैं । इस घुटन और बेचैनी को आपने कभी अनुभव किया है , तो आप यह भी अनुभव कर सकेंगे कि जब-जब हम प्रेम की विफलता से आक्रान्त होते हैं और हमारे भीतर भाषा नहीं होती , हम इसी प्रकार की यातनापूर्ण स्थितियों में होते हैं । इसी तरह की परास्तता और मृत्युप्रायता में । उस वायवीयता से वंचित , जो हमें चेतना के स्तर पर प्राण धारण किए रहने की शक्ति देती है । भाषा , इसीलिए , वायु भी है । अपने भीतर मनुष्य इसीमें जीवित रहता है । यों आप सभी जानते हैं कि हवा बहुत सापेक्ष चीज़ है । और भाषा भी । हमारे भीतर घृणा हो , तो वह और यदि करुणा हो , तो वह — हमारी भाषा में ये होते हैं और तब हम अगर समझने की कोशिश करें , तो स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं कि इस वक्त हम किस तरह की भाषा में हैं । वायु-विकार के बारे में आप जानते होंगे ? ... आप ऊबें नहीं । मैं आपको , ऊबने की जगह धैर्य को चुन लेने की सलाह दूंगा । इस अरण्य की जिन ऊंचाइयों तक हमें पहुंचना है , अगर हम ऊबे , तो यह ऊबना वात की तरह हमारे घुटनों में भर जाएगा और हम असमर्थ हो जाएंगे । दरअसल जिस भाषा में मैं आज दोपहर तक रहा हूं , उसमें जकड़ा रह जाना , मेरे लिए घातक सिद्ध होगा । उस भाषा में होने का एक ही परिणाम हो सकता है , आदमी को सिर्फ उसकी बेहूदगी और बदी में देखना । [76]

और यह उपन्यास इस प्रकार के परिच्छेदों तथा वाक्यों से भरा हुआ है । लेखक जो धैर्य रखने की सलाह देते हैं , सचमुच में वह

सार्थक सिद्ध होती है ।

जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है मटियानीजी के लगभग इक्कीस उपन्यास प्राप्त होते हैं , परन्तु "भात-पतीली-न्याय " से जैसे भात चढ़ गए हैं कि नहीं , यह देखने के लिए एक-एक दाने को दबाना नहीं होता है , ठीक उसी तरह यहां भी उनके सभी उपन्यासों को लेने के बजाय उनकी अलग-अलग कोटि के दो-तीन उपन्यासों को उनकी भाषिक-संरचना के संदर्भ में देखा गया है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन द्वारा हम सहजतया निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुंच सकते हैं :—

§1§ किसी भी लेखक की भाषा को जानने-समझने के लिए उसके जीवन से गुजरना आवश्यक है ।

§2§ शैलेश मटियानीजी का जीवन संघर्ष की एक अनवरत यात्रा है । संघर्ष की अग्नि ने ही उनके लेखक के कुंदन को चमकाया है । दुःखों में तपकर ही लेखक हुए हैं । उनकी अपराजेय आस्था के संबल ने ही उनको लेखक बनाया है ।

§3§ किसी लेखक की अवधारणाएं और उसका चिंतन भी उसके गद्य को एक निखार देता है । मटियानीजी की अवधारणाएं बिल्कुल स्पष्ट और दो-टूक है । उसमें वैचारिक पारदर्शिता है । मटियानीजी उन कम लेखकों में है , जो मानते हैं कि कवि या लेखक के कृतित्व को उसके व्यक्तित्व के आईने में भी देखना चाहिए । उनका स्पष्टतः यह मंतव्य है कि लेखक यदि स्वयं दलित या पीड़ित न रहा हो , तो भी उसे पीड़ितों का पक्षधर होना चाहिए । उसे वे साहित्यकार का "वाल्मीकि-धर्म " कहते हैं ।

§4§ समर्थ लेखकों की भाषा में हमें ये पांचों तत्त्व प्रभूत मात्रा में मिलते हैं — भूमि , जल , अग्नि , आकाश और हवा । मटियानीजी का यह दृढ़ मत है । भूमि उसे आधार देती

है, जल उसे प्रवाह देता है, अग्नि आलोक, आकाश विस्तार और हवा स्पर्श देती है। साहित्य भी सिर्फ वही बच सकता है, जिसमें दिखाई पड़ता है मनुष्य — अपनी पूरी शक्ति से स्वयं से सवाल उठाता हुआ। उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि किसी साहित्यकार का व्यवस्था के तंत्र में जाकर सुविधाभोगी हो जाना उतना हानिकारक नहीं जितना कि उसे भी एक जीवन-मूल्य सिद्ध करने का चातुर्य बरतना।

‖5‖ मटियानीजी के उपन्यासों में "हौलदार", "चिट्ठी-रसैन", "मुखसरोवर के हंस", "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई", "कबूतरखाना", "बोरीवली से बोरीबन्दर तक", "छोटे-छोटे पक्षी", "आकाश कितना अनंत है", "रामकली", "गोपुली गफूरन", "बर्फ गिर चुकने के बाद" भाषिक-संरचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं और उनके आधार पर कहा जा सकता है कि मटियानीजी की औपन्यासिक भाषा उनमें निरूपित कथावस्तु पर खरी उतरती है।

======= XXXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द नोवेल एण्ड द पिपल : राल्फ फोक्स : पृ. 117 ।

§2§ समीक्षायण : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. ।

§3§ लेखक की हैसियत से : मटियानी : पृ . 7 ।

§4§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : मटियानी : भूमिका : पृ. 6 ।

§5§ लेखक की हैसियत से : पृ. 7 ।

§6§ वही : पृ. 88-136 ।

§7§ वही : पृ. 76 ।

§8§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका : पृ. 10 ।

§9§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 10 ।

§10§ वही : पृ. 11 ।

§11§ वही : पृ. 20 ।

§12§ द्रष्टव्य : मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका ; लेखक की हैस हैसियत से ; लेखक और संवेदना ; यदा-कदा ; त्रिज्या में संकलित आत्मकथनात्मक लेख तथा संस्मरण : सभी के लेखक -- मटियानी ।

§13§ डा. पारूकान्त देसाई "कबिरा" की व्यक्तिगत काव्य-डायरी से ।

§14§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका : पृ. 10 ।

§15§ वही : पृ. 16 ।

§16§ लेखक और संवेदना : पृ. 61 ।

§17§ से §19 § : वही : पृ. क्रमशः 47 , 33, 80 ।

§20§ लेखक की हैसियत से : पृ. 57 ।

§21§ लेखक और संवेदना : पृ. 11 ।

§22§ और §23§ : लेखक की हैसियत से : पृ. क्रमशः 15 , 19 ।

§24§ और §25§ : मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका : पृ. क्रमशः 25, 31-32

§26§ मुख्यधारा का सवाल : मटियानी : पृ. 151-152 ।

§27§ से §32§ : त्रिज्या : मटियानी : पृ. क्रमशः 8, 13, 37, 45, 51, 281 ।

§33§ से §36§ : यदा-कदाः मटियानी : पृ. क्रमशः 63, 119, 157, 158 ।

§37§ हौलदार : मटियानी : पृ. 1-2 ।

§38§ वही : पृ. 7 ।

§39§ वही : पृ. क्रमशः 15, 79, 79, 171, 111, 257, 322, 295, 284, 256 , 27 ।

§40§ वही : पृ. 252-253 ।

§41§ चिट्ठीरसैन : मटियानी : पृ. 89 ।

§42§ वही : पृ. 49-50 ।

§43§ मुखसरोवर के हंस : मटियानी : पृ. आमुख से ।

§44§ शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध : डा. सलीम बोरा : पृ. 69 ।

§45§ मुखसरोवर के हंस : पृ. 3-4 ।

§46§ द्रष्टव्य : एन ए. बी. जेड आफ लव : इंगे एण्ड स्टेन हेगर : पृ. ।

§47§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : मटियानी : आमुख से ।

§48§ द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 2, 17, 17, 27, 48, 56 ।

§49§ कबूतरखाना : मटियानी : " दो शब्द " से ।

§50§ बोरीवली से बोरीबन्दर तक : मटियानी : पृ. 128 ।

§51§ कबूतरखाना : भूमिका ।

§52§ पहाड़ : शैलेश मटियानी विशेषांक : पृ. 135 ।

§53§ शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध : पृ. 91 ।

§54§ बोरीवली से बोरीबन्दर तक : पृ. 99 ।

§55§ वही : पृ. 185 ।

§56§ छोटे-छोटे पक्षी : मटियानी : पृ. क्रमशः 18, 33, 60, 72, 73, 105, 108 , 114 ।

§57§ उपन्यास के फ्लेप पर दिया गया वक्तव्य ।

§58§ आकाश कितना अनंत है : मटियानी : पृ. 257 ।

§59§ आकाश कितना अनंत है : मटियानी : पृ. 257-258 ।

§60§ वही : पृ. 250 ।

§61§ रामकली : मटियानी : लेखकीय वक्तव्य से ।

§62§ वही : पृ. 63 ।

§63§ वही : पृ. 104 ।

§64§ लेखक की हैसियत से : मटियानी : पृ. 118 ।

§65§ गोपुली गफूरन : मटियानी : पृ. 193-194 ।

§66§ से §70§ : वही : पृ. क्रमशः 196-197, 197, 197-178 , 198, 198 ।

§71§ बर्फ गिर चुकने के बाद : आरम्भ से ।

§72§ ~~से §78§ वही पृ. क्रमशः~~ "हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य" : अज्ञेय : पृ. 86 ।

§73§ से §76 § : बर्फ गिर चुकने के बाद : मटियानी : पृ. क्रमशः 13-14, 14, 98, 36-37 ।